वार्षिक रु. १००, मूल्य रु. १२

विवेक ज्योति

वर्ष ५४ अंक ४ अप्रैल २०१६

रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अप्रैल २०१६

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५४
अंक ४

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी के दौरान भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५३ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर यह 'ज्योति' भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाएँ पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **— व्यवस्थापक**

प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

(फार्म ४ नियम ८ के अनुसार)

१. प्रकाशन का स्थान - रायपुर
२. प्रकाशन की नियतकालिकता - मासिक
३.-४. मुद्रक एवं प्रकाशक - स्वामी सत्यरूपानन्द
५. सम्पादक - स्वामी प्रपत्त्यानन्द
राष्ट्रीयता - भारतीय
पता - रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर
स्वत्वाधिकारी - रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ के ट्रस्टीगण - स्वामी आत्मस्थानन्द, स्वामी स्मरणानन्द, स्वामी प्रभानन्द, स्वामी सुहितानन्द, स्वामी भजनानन्द, स्वामी शिवमयानन्द, स्वामी गौतमानन्द, स्वामी मुमुक्षानन्द, स्वामी वागीशानन्द, स्वामी गिरीशानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द, स्वामी दिव्यानन्द, स्वामी सुवीरानन्द, स्वामी बोधसारानन्द, स्वामी तत्त्वविदानन्द, स्वामी बलभद्रानन्द, स्वामी सर्वभूतानन्द, स्वामी लोकोत्तरानन्द, स्वामी ज्ञानलोकानन्द, स्वामी अभिरामानन्द और स्वामी मुक्तिदानन्द।

मैं स्वामी सत्यरूपानन्द घोषित करता हूँ कि ऊपर दिए गए विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य हैं।

(हस्ताक्षर)
स्वामी सत्यरूपानन्द

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर दिया गया मन्दिर का चित्र रामकृष्ण मिशन, लींबड़ी (गुजरात) स्थित भगवान श्रीरामकृष्ण देव के सार्वजनीन मन्दिर का है । इस नवनिर्मित मन्दिर की प्राण-प्रतिष्ठा १ नवम्बर, २०१४ को जगद्धात्री पूजा के पावन अवसर पर हुई थी ।

गुजरात स्थित लींबड़ी स्वामी विवेकानन्द की स्मृतियों से जुड़ा हुआ है । १८९१ ई. में स्वामीजी ने अपने परिव्राजक जीवन के समय यहाँ के टॉवर बँगले में कुछ दिन निवास किया था। यहाँ के महाराजा ठाकुर श्रीयशवंतसिंह जी से उनकी भेंट हुई थी और वे स्वामीजी से अत्यधिक प्रभावित हुए थे । १९६८ ई. में स्थानीय भक्तों के प्रयास से श्रीरामकृष्ण प्रार्थना मन्दिर का शुभारम्भ हुआ और १९९४ में वर्तमान स्थान सहित यह रामकृष्ण मिशन के शाखा-केन्द्र के रूप में परिवर्तित हुआ ।

अप्रैल माह के जयन्ती और त्योहार

१५ रामनवमी
२२ हनुमान जयन्ती

वर्ष ५४ अप्रैल २०१६ अंक ४

श्रीहनुमत् वन्दना

ताञ्जानकीविरहवेदनहेतुभूतान्
द्रागाकलय्य सदशोकवनीयवृक्षान्।
लङ्कालकानिव घनानुदपाटयद्य-
स्तं हेमसुन्दरकपिं प्रणमामि पुष्ट्यै।।

– लंका के सुन्दर अशोक वन के घने वृक्षों को श्रीसीताजी की विरह-वेदना का कारण समझकर जिन्होंने लंका नगरी को स्निग्ध अलकावली के समान उन्हें शीघ्र ही उखाड़ डाला, उन सुवर्णसदृश सुन्दर शरीरवाले कपिवर श्रीहनुमानजी की मैं अपनी पुष्टि के लिये वन्दना करता हूँ। वे महावीर हनुमानजी हमारा सब प्रकार से संरक्षण करें।

तीर्त्वोदधिं जनकजार्पितमाप्य चूडा-
रत्नं रिपोरपि पुरं परमस्य दग्ध्वा।
श्रीरामहर्षगलदश्रुवभिषिच्यमानं
तं ब्रह्मचारिवरवानरमाश्रयेऽहम्।।

जिन्होंने समुद्र लंघन किया, श्रीसीताजी के द्वारा प्रदत्त चूड़ारत्न को प्राप्त किया और शत्रु की विशाल लंका नगरी को जलाकर भस्म कर दिया, श्रीराचन्द्रजी के आनन्दाश्रु से सींचे जानेवाले, ब्रह्मचारियों में श्रेष्ठ वानरश्रेष्ठ महावीर श्रीहनुमानजी की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

(विविध स्तोत्राणि, पृ. २३३)

पुरखों की थाती

यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च
यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च
तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति।।४९६।।

– जिस कारण, जिसके द्वारा, जिस तरह, जब, जैसा, जितना और जहाँ पर प्राणी द्वारा भला या बुरा कर्म हुआ रहता है; उसी कारण, उसी के द्वारा, उसी तरह, उसी समय, वैसा ही, उतना ही और वहीं पर भाग्यवश होकर भोगता है।

यस्य प्रसादे पद्माऽस्ते विजयश्च पराक्रमे।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः।।४९७।।

– राजा की प्रसन्नता में लक्ष्मी, पराक्रम में विजय और क्रोध में मृत्यु विराजमान है, अत: उसे सर्वतेजोमय कहा गया है।

यथा काष्ठञ्च काष्ठञ्च समेयातां महोदधौ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद्भूत-समागमः।।४९८।।

– जैसे समुद्र में बहते हुए लकड़ी के दो टुकड़े आकर मिल जाते हैं और लहरों के थपेड़े खाकर फिर दूर हो जाते हैं, ठीक वैसे ही संसार के प्राणियों का मिलन-वियोग होता है।

यथा हि पथिकः कश्चिच्छायामाश्रित्य तिष्ठति।
विश्रम्य च पुनर्गच्छेत् तद्वद्भूतसमागमः।।४९९।।

– जैसे कोई पथिक रास्ते में चलते-चलते थककर किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाता और थोड़ी देर विश्राम करके फिर चल देता है। इसी तरह संसार के प्राणियों का मिलन-वियोग है।’

विविध भजन

आया हूँ दरबार तुम्हारे

सन्त तुकड़ोजी महाराज

आया हूँ दरबार तुम्हारे ।
बहुत जनम का भूला-भटका
लगवाले प्रभु चरण सहारे ।
तुम्हरो नाम पतित पावन है,
चहूँ दिस गावत सब जन-जन हैं ।
मुझको काहें सतावत मारे ।।
आया हूँ दरबार तुम्हारे ...
धन नहीं माँगू, माँगू न सत्ता,
नहीं माँगू विषयन की ममता ।
हे प्रभु ! दया की दृष्टि निहारे ।।
आया हूँ दरबार तुम्हारे ...
भाग्य बड़ा मन तुमसे लागा,
नहीं तो जाता जमघर भागा ।
तुकड़्या कहे सुन अर्ज हमारे ।।
आया हूँ दरबार तुम्हारे ...

जय जय जय हनुमान

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

हे अंजनीसुत केसरीनन्दन रामदूत हनुमान ।
हे सीताप्रिय मारुतिनन्दन जय जय जय हनुमान ।।
बचपन में रविभक्षण करके, निज शक्ति दिखलाये,
सिन्धु पार जा लंक जलाये, सीता की सुधि लाये ।
निशिचर-नाशक, रावण-त्रासक, काँपत जातुधान ।।
बल-विद्या-बुद्धि-आगर हनुमत, तुम हो चतुर सुजान ।
भक्ति-ज्ञान की ज्योति जलाकर, हर जग का अज्ञान ।
प्रेम-भक्ति के सागर कविवर, तेरी महिमा महान ।।
सेवक सीताराम चरण के, प्रभुहित में तव प्रान,
अविचल श्रद्धा-भक्ति प्रभु में, अखण्ड तेरा ध्यान ।
'जय श्रीराम' की पावन ध्वनि गूँजे हिय में अविराम ।।
जय सियाराम, जय जय सियाराम जय जय श्रीराम ।।

बिहरत सिय रघुवीर

स्वामी राजेश्वरानन्द

बिहरत सिय रघुवीर तीर मन्दाकिनी के,
संग लखन रनधीर तीर मन्दाकिनी के ।।
शीतल पवन सु विजन डुलावैं, सुरगन मुदितमन बरसावैं ।
बोलत कोकिल कीर, तीर मन्दाकिनी के ।।
जनक लली अरु जानकी जीवन, मोर कहैं मेरे दोउ धन ।
नाचत सुधि न शरीर, तीर मन्दाकिनी के ।।
हेरि हिरन तन सुधि विसरावत, भूलि भागिबो भाग सराहत,
बहुत दृगन तें नीर, तीर मन्दाकिनी के ।।
जनक दुलारी के पद परसत, चित्रकूट के कण-कण हरषत ।
धनि हमरी तकदीर, तीर मन्दाकिनी के ।।
घर बैठे सियराम पधारे, भील कहैं धनि भाग हमारे ।
भई दर्शन को भीर, तीर मन्दाकिनी के ।।
देखे आय सिया रघुराई, जन राजेश के नैनन पाई,
जुगल रूप जागीर, तीर मन्दाकिनी के ।।

बीत गयो दिन दरस बिना रे

स्वामी रामतत्त्वानन्द

बीत गयो दिन दरस बिना रे ।
पारस पास सुवास हमारो भयो न कंचन परस बिना रे ।।
रामकृष्ण हैं गंगावारी नित्य सबको पावन करे,
प्रेममयी सारदा भवानी, नित प्रेम सावन झरे ।
अहंकार की उल्टी कटोरी, वृथा जनम भयो जलद बिना रे ।।
बड़ी प्रबल है जग की माया, लाख जतन कर छूटे नाहीं,
मन से रिश्ता काम-क्रोध का, ऐसा बँधा कि टूटे नाहीं ।
'नामधन' भी वृथा गँवाया, पड़ा रह गया खरच बिना रे ।।
लुटाया तूने पारस धन को, कल्पतरु बन हे कृपालु,
विनोदिनी को तारा तूने, दयासिन्धु बन हे दयालु ।
निराश मन की एक ही आशा, मुक्ति नहीं तव कृपा बिना रे ।।

दयाल ठाकुर रामकृष्ण मम

(गतांक का शेषांश)

महान कवि रामधारी सिंह दिनकर जी लिखते हैं –

धरा जब जब विकल होती, मुसीबत का समय आता।
किसी भी रूप में कोई महामानव चला आता।।

जब-जब पृथ्वी व्यथित और संकटग्रस्त हुई, तब-तब किसी भी रूप में कोई महामानव आविर्भूत हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण देव के सम्बन्ध में दिनकरजी 'संस्कृति के चार अध्याय' (४८१-४८२) नामक ग्रन्थ में लिखते हैं –

"पंडित और सन्त में वही भेद होता है, जो बुद्धि और हृदय में है। बुद्धि जिसे लाख कोशिश करने पर भी नहीं समझ पाती, हृदय उसे अचानक देख लेता है। विद्या समुद्र की सतह पर उठती हुई तरंगों का नाम है। किन्तु अनुभूति समुद्र की अन्तरात्मा में बसती है। अनुभूति का एक कण मानो ज्ञान से कहीं अधिक मूल्यवान है। परमहंस श्रीरामकृष्ण अनुभूतियों के आगार थे और उनके जीवन को देखकर एक बार फिर यह स्पष्ट हो गया है कि जिसे अनुभूति प्राप्त हो जाती है, ज्ञान का द्वार उसके सामने स्वयं उन्मुक्त हो जाता है तथा सारी विद्याएँ उसे स्वयमेव उपलब्ध हो जाती हैं।"

श्रीरामकृष्णावतार के सम्बन्ध में भारत-कविनभमंडल के प्रखर दिनमान डॉ. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला जी अपने 'परमहंस श्रीरामकृष्ण देव' निबन्ध में लिखते हैं –

"इस बार मूर्तिमान धर्म, पवित्रता से पवित्र संसार के इतिहास में अद्वितीय महापुरुष भगवान श्रीरामकृष्णदेव का आविर्भाव हुआ। आज तक जितने अतिमानव चरित्रों का इतिहास मिलता है और भारत में ही उनकी अधिकता सम्भव है, इतनी पूर्णता उनमें से किसी में भी नहीं पायी जाती। जड़वाद की अज्ञान परम्परा जितनी ही बढ़ती जाती है, इधर अध्यात्मवाद की पूर्णता का चरित्र भी उतना ही उज्ज्वल नजर आता है।"

"जिस तरह हिन्दू-धर्म की स्पष्ट परिभाषा नहीं हो सकती, कहना चाहें, तो आप उसे एक अखण्ड वेदान्त तत्त्व कह सकते हैं – सर्वभावमय होते हुए भी सर्वभावातीत, उसी प्रकार श्रीरामकृष्ण का भी आध्यात्मिक परिचय देना असम्भव है। व्यावहारिक साधना में उन्होंने दिखलाया कि वे हिन्दू-धर्म के राम-कृष्ण शक्ति आदि देवी-देवताओं के भी सिद्ध-उपासक थे और मूर्ति-उपासना-वर्जित वेदान्त के भी सिद्ध महापुरुष थे। वे इस्लाम के भी अनुयाई थे और क्रिस्तान धर्म की साधना भी उन्होंने की थी। क्यों? क्यों ऐसा किया? सिद्ध हो गये, तो इतनी उपासनाएँ क्यों? उत्तर स्पष्ट है कि संसार को ऐसे ही एक आदर्श महापुरुष की आवश्यकता थी, जो संसार को धर्म के एक ही बन्धन से बाँधता। श्रीरामकृष्ण देव ने बतलाया, धर्म के पथ अनेक हैं, किन्तु लक्ष्य एक है। अतएव किसी को यह अधिकार नहीं है कि वह अपने धर्म को श्रेष्ठ और दूसरे के धर्म को निकृष्ट कहे।" (निराला साहित्य, भाग ६, पृष्ठ ६०)

"इस बार अत्याचार पीड़ित और भोगान्ध मनुष्यों को पता बताने के लिये भगवान श्रीरामकृष्ण अवतीर्ण हुए, इस बार भी भारत शान्ति का केन्द्र बना। संसार में आज जो आध्यात्मिक प्रवाह बह रहा है, उसकी उत्पत्ति भगवान श्रीरामकृष्ण-महान-अध्यात्म-तत्त्व स्वरूप से हुई। आज विश्व समाज में भ्रातृत्व-बन्धन की जो ध्वनि गूँज रही है, वह सबसे पहले भगवान श्रीरामकृष्ण जी के मुख से निकली थी। विश्वविजयी वेदान्तकेसरी स्वामी विवेकानन्द की वीर वाणी को मन्त्रमुग्धवत् संसार सुन रहा है, पर उनकी दिव्य शिक्षा भगवान श्रीरामकृष्ण देव के पद-प्रान्त पर समाप्त हुई थी। आज भारत में एकता-लता पर जो फूल खिल रहा है, उसके निपुण माली हैं, भगवान श्रीरामकृष्ण।" (समन्वय, मासिक, मई-जून १९२२)

अवतार-प्रयोजन का चिन्तन क्यों? : एक विश्लेषण

जिस परमात्मा ने भक्त की व्यथा से व्यथित होकर स्वधाम का त्यागकर करुणार्द्र होकर इस मृत्युलोक में, इस धराधाम पर अवतार लिया, उन मानवों का क्या कर्तव्य है? क्या हम परमेश्वर की उस असीम कृपा के प्रति कृतज्ञता बोध कर रहे हैं? क्या हम विचार कर रहे हैं कि जिसने हमें दुखमुक्त करने हेतु, हमारे भवबन्धनों के उच्छेदन हेतु हमारे अति समीपस्थ भूमि पर पदार्पण किया, हमारे लिये सहज मुक्तिमार्ग प्रदर्शित किया, तो हम उस भवपाशमुक्ति की दिशा में प्रयत्नशील हुए कि नहीं? हम उस जन्म-मरण-चक्र से मुक्त हुए कि नहीं? हम सांसारिकता को त्यागकर उस परमात्मा के साथ सामीप्य स्थापित कर परमानन्द के भागी हुए कि नहीं? भगवान

दयावश अवतार लेकर कृपा कर हमारे घर-घर आकर, बड़े प्रेम से सबको बुला-बुलाकर भगवन्नाम सुनाते रहे, हरिनाम लुटाते रहे, हमें हाथ पकड़कर मुक्तिमार्ग पर अग्रसर कराते रहे, हम उनके प्रदर्शित मार्ग पर अग्रसर हुए कि नहीं? हम उनके चरणों में पूर्ण समर्पण कर उनके सान्निध्य-बोध की पावनता और परमशान्ति से ओतप्रोत हुए कि नहीं?

इसी आत्मचिन्तन, आत्ममन्थन, आत्मविश्लेषण और आत्मसंशोधन हेतु श्रीरामकृष्ण के अवतार प्रयोजन का चिन्तन, मनन आवश्यक है?

हृदय-सिंहासन पर भगवान का आह्वान करें

हम अपना हृदय-सिंहासन भगवान के लिये खोल कर रखें। भगवान के गुण-लीलाओं का चिन्तन-मनन-निदिध्यासन कर अपने हृदय-सिंहासन को स्वच्छ, शुद्ध, पवित्र कर भगवान का आह्वान करें। देवेन्द्रनाथ मजुमदार ने बड़े भावुक और व्याकुलभाव से लिखा है, जिसमें ईश्वर के लिये गोपियों जैसी व्याकुलतापूर्वक आह्वान है –

एसो हृदय दोलाय, दुलाई तोमाय
प्राणेर ठाकुर रामकृष्ण मम।
तुमि जे मोर प्राणप्रिय, प्रियतम घनश्याम।।
रेखेछी हृदय आसन पाती, तव पथ चाही दिवस राती,
एशो एशो प्रभु एशो दयाकरि,
मोर जतो अपराध क्षमक्षम।।
खुँजेछि बाहिरे एधार ओधार,
तुमि बोलेछो तुमि हृदये आमार।
एबार दरस दाने जुड़ाव मन-प्राणे,
दयाल ठाकुर रामकृष्ण मम।।

भावार्थ – हे मेरे प्राणप्रिय प्रभु श्रीरामकृष्ण, आप मेरे हृदय के झूले में आइये, मैं आपको झुलाऊँगा। आप मेरे प्राणप्रिय घनश्याम हैं। मैं हृदय में आसन बिछाकर कबसे आपकी बाट खोज रहा हूँ। हे प्रभु, आप दयाकर आइए, मेरे सारे अपराधों को क्षमा कीजिए। मैंने बाहर इधर-उधर खोजा, किन्तु आपने कहा है कि आप मेरे हृदय में रहते हैं। हे दयालु प्रभु श्रीरामकृष्ण ! अब मुझे दर्शन देकर मेरे हृदय को शान्त और परिपूर्ण कीजिए।

जिस प्रकार गोपियाँ माखन-मिसरी रखकर अपने घर में भगवान श्रीकृष्ण को हृदय से पुकार कर रही हैं – हे प्रभु, मैं तो दीन गँवार ग्वालिनी हूँ। क्या आप कृपा कर मेरे घर नहीं पधारेंगे? हे नाथ, मैं आपकी प्रतीक्षा कर रही हूँ। आप आइए और मेरी माखन-मिसरी का भोग लगाकर, मुझे बाल-लीला का रस पान कराकर धन्य कीजिए। हे स्वामी, मैं तो आपकी दासी हूँ, आपकी सेविका हूँ। क्या आप अपनी लीलाओं से मुझे कृतार्थ नहीं करेंगे? मैं आपकी कबसे प्रतीक्षा कर रही हूँ। तब भगवान उस ग्वालिन के घर में जाकर उसे कृतार्थ करते हैं। इसलिये जब हम भी उतनी व्याकुलता के साथ भगवान को पुकारेंगे, तो भगवान हमारे हृदय में और बाहर सर्वत्र प्रकट होकर अपने दिव्य दर्शन की अनुभूति कराकर हमें कृतार्थ करेंगे।

तभी तो युगावतारसंगिनी आदिशक्ति जगदम्बा की अवतार भक्तहृदय-आनन्ददायिनी श्रीमाँ सारदा से व्याकुल होकर प्रार्थना करते हुए सन्तकवि प्रत्ययानन्द जी महाराज लिखते हैं –

केहो नाहि जार आछो तुमि तार, तव पथ चेये थाकि।
असार जीवने सार दे सारदा, आमारे दिओ न फाँकि।।

भावार्थ – हे माँ जिसका कोई नहीं है, उसकी तुम्हीं माँ हो। मैं तेरे पथ पर आशा लगाये देख रहा हूँ। माँ मेरे असार जीवन में सार वस्तु प्रदान करो। माँ मुझे भूल मत जाना, मैं कबसे तेरे आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

जब ऐसी व्याकुलता होती है, तो भगवान कभी शान्तिपूर्वक सखा समेत पहुँचते हैं और कभी सबको ज्ञात कराते हुए पहुँचते हैं। कभी आते शान्ति से हैं और जाते शोर करके हैं। तीव्र व्याकुलतावश भक्त के शुद्ध हृदय में भगवान धीरे से प्रकाशित होते हैं, किन्तु जब जाते हैं, तो भक्त उस वियोग का संवरण नहीं कर पाता और उसके वियोगभाव की प्रतिक्रिया उसके मुखमण्डल पर दृष्टिगोचर होती है। हृदय में भगवान के प्राकट्यजनित आलोक का प्रतिबिम्ब भक्त के मुखमंडल पर दिव्य शान्ति के रूप में प्रकट होता है। उसके दैवी आचरण से अभिव्यक्त होता है, तब जनमानस को अनचाहे भी ज्ञात हो जाता है। तब समाज में एक अद्भुत विलक्षण दिव्य आनन्दमय वातावरण बन जाता है। इसलिये भगवान आते शान्ति से हैं, लेकिन जब जाते हैं, तो अनायास ही समाज में एक आन्दोलन हो जाता है, एक क्रान्ति हो जाती है। समाज में एक शान्ति, सद्भाव, समरसता, भगवद्भावमय आध्यात्मिक वातावरण बन जाता है। यही भगवान के दिव्य अवतरण का प्रयोजन है।

इसीलिए हम भगवान के अवतरण और प्रयोजन पर चिन्तन-मनन करें और अपने शुद्ध हृदयासन को खोलकर प्राणप्रिय भगवान को व्याकुल होकर पुकारें, ताकि भगवान अब और अधिक विलम्ब न कर सकें। ○○○

ऋषि कौन थे?

स्वामी विवेकानन्द
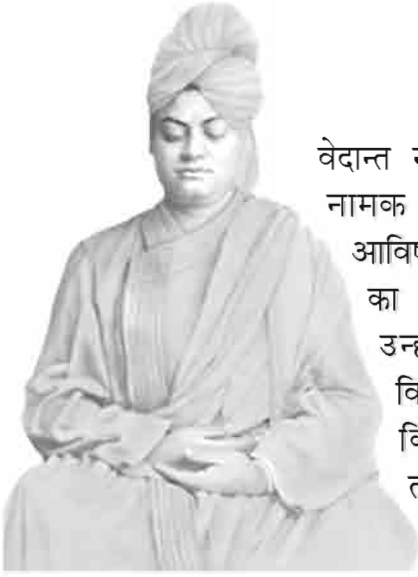
वेदान्त नामक ज्ञानराशि ऋषि नामक व्यक्तियों के द्वारा आविष्कृत हुई। ऋषि शब्द का अर्थ है – मन्त्रद्रष्टा। उन्होंने पहले ही से विद्यमान ज्ञान को प्रत्यक्ष किया था, वह ज्ञान तथा भाव उनके अपने विचार का फल नहीं था। जब कभी तुम सुनो कि वेदों के अमुक अंश के ऋषि अमुक हैं, तब यह मत सोचो कि उन्होंने उसे लिखा या अपनी बुद्धि द्वारा रचा है, बल्कि वे पहले से ही विद्यमान भावराशि के द्रष्टा मात्र हैं – वे भाव अनादि काल से ही इस संसार में विद्यमान थे, ऋषि ने उनका आविष्कार मात्र किया। ऋषिगण आध्यात्मिक आविष्कारक थे।

ऋषि कौन हैं? उपनिषद कहते हैं कि 'ऋषि कोई साधारण व्यक्ति नहीं, वे मन्त्रद्रष्टा हैं।' ऋषि वे हैं, जिन्होंने धर्म को प्रत्यक्ष किया है, जिनके लिए धर्म – केवल पुस्तकों का अध्ययन, या युक्तिजाल, या व्यावसायिक ज्ञान या वाग्वितण्डा मात्र नहीं, अपितु प्रत्यक्ष अनुभव है, अतीन्द्रिय सत्य का साक्षात् बोध है। यही ऋषित्व है।

चेतना पंचेन्द्रियों द्वारा सीमाबद्ध है। आध्यात्मिक जगत के सत्य को प्राप्त करने के लिए मनुष्यों को चेतना की अतीत भूमि में, इन्द्रियों के परे जाना होगा। अब भी ऐसे व्यक्ति हैं, जो पंचेन्द्रियों की सीमा के परे जा सकते हैं। ये ऋषि कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने आध्यात्मिक सत्यों का साक्षात्कार किया है।

जिस प्रकार हम अपने सामने की इस मेज को प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते हैं, उसी प्रकार वेदोक्त सत्यों का प्रमाण भी प्रत्यक्ष अनुभव है। यह हम इन्द्रियों से देख रहे हैं और आध्यात्मिक सत्यों का भी हम जीवात्मा की ज्ञानातीत अवस्था में साक्षात् करते हैं ऐसा ऋषित्व प्राप्त करना देश, काल, लिंग या जाति-विशेष के ऊपर निर्भर नहीं करता। वात्स्यायन निर्भयतापूर्वक घोषणा करते हैं कि यह ऋषित्व – ऋषियों की सन्तानों, आर्यों अनार्यों, और यहाँ तक कि म्लेच्छों की भी संयुक्त सम्पत्ति हैं।

यही वेदों का ऋषित्व है। हमको भारतीय धर्म के इस आदर्श को सर्वदा स्मरण रखना होगा, और मेरी तो इच्छा है कि संसार की अन्य जातियाँ भी इस आदर्श को समझकर याद रखें, क्योंकि इससे धार्मिक लड़ाई-झगड़े कम हो जाएँगे। शास्त्र-ग्रन्थों में धर्म नहीं होता, या फिर सिद्धान्तों, मतवादों, चर्चाओं या तार्किक उक्तियों में भी धर्म की प्राप्ति नहीं होती। धर्म तो स्वयं होने तथा बनने की चीज है। मेरे मित्रो, जब तक तुम ऋषि नहीं बनोगे और जब तक तुम्हारा आध्यात्मिक सत्यों के साथ साक्षात्कार नहीं होगा, तब तक तुम्हारा धार्मिक जीवन आरम्भ ही नहीं हुआ है।

हमारे समाज के नेता कभी सेनानायक या राजा नहीं, अपितु ऋषि थे। ... यह ऋषित्व किसी आयु या समय या किसी सम्प्रदाय या जाति की अपेक्षा नहीं रखता। वात्स्यायन कहते हैं – ''सत्य का साक्षात्कार करना होगा और स्मरण रखना होगा कि हममें से प्रत्येक को ऋषि होना है।'' साथ ही हमें अगाध आत्मविश्वास से भी सम्पन्न होना चाहिए। हम लोग सारे संसार में शक्ति-संचार करेंगे, क्योंकि सारी शक्ति हममें ही विद्यमान है। हमें धर्म का प्रत्यक्ष साक्षात्कार करना होगा, उसकी उपलब्धि करनी होगी, तभी हम ऋषित्व की उज्ज्वल ज्योति से पूर्ण होकर महापुरुष-पद प्राप्त कर सकेंगे, तभी हमारे मुख से जो वाणी निकलेगी, वह सुरक्षा की असीम स्वीकृति से पूर्ण होगी।

महान धर्माचार्यगण

प्रत्येक देश के आध्यात्मिक जीवन में पतन और उत्थान के युग होते हैं। जब देश की अवनति होती है, तो लगता है कि उसकी जीवनी-शक्ति नष्ट हो गयी है – छिन्न-भिन्न हो गयी है। परन्तु वह पुन: बल संग्रह करती है – उन्नति करने लगती है – जागृति की एक विशाल लहर उठती है और हर बार यही देखने में आता है कि इस विशालकाय तरंग के उच्चतम शिखर पर कोई दिव्य महापुरुष विराजमान हैं। एक ओर जहाँ वे उस तरंग-राष्ट्र के अभ्युत्थान के शक्तिदाता होते हैं, वहीं दूसरी ओर समाज ही उनकी इस प्रचण्ड शक्ति के आविर्भाव का कारण होता है। ये ही संसार के महान विचारक तथा मनीषी होते हैं, ये ही दुनिया के पैगम्बर, जीवन-दर्शन के सन्देश-वाहक ऋषि और ईश्वर के अवतार कहलाते हैं। ○○○
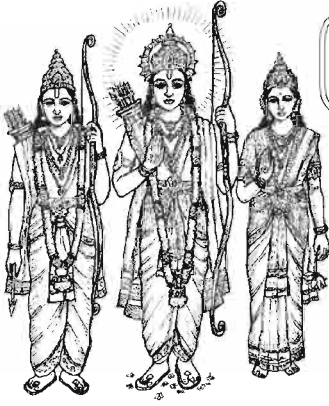
धर्म-जीवन का रहस्य (९/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

महाराज अब कीजिए सोई।
सबकर धरम सहित हित होई।। २९०/८
ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहिकाल।२/२९१

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज, परम श्रद्धेय स्वामी गौतमानन्द जी महाराज, अन्य समस्त सन्त, जिज्ञासु श्रोतावृन्द और भक्तिमती देवियों, मैं आप सबके चरणों में सादर नमन करता हूँ।

पचीस वर्ष पहले की स्मृति मेरे मस्तिष्क में आ जाती है। सर्वप्रथम इसी आश्रम के प्रांगण में और सम्भवत: जो एक छोटा-सा वाचनालय-कक्ष था, उसी में इस कथा का क्रम प्रारम्भ हुआ था। उस समय ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज स्वयं यहाँ नहीं थे। मेरे यहाँ आने के पीछे जिनका स्नेह माध्यम बना, वे थे श्री प्रेमचन्दजी जैस। उनके स्नेह से आकृष्ट होकर ही मैं रायपुर में आ गया था। जो प्रथम बार आयोजन हुआ, उसमें स्वामी आत्मानन्दजी महाराज स्वयं नहीं थे, परन्तु यहाँ के कार्यक्रम के पश्चात उनकी ओर से जब दुबारा आने का आमंत्रण मिला, तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता और सन्तोष की अनुभूति हुई; क्योंकि साधारण श्रोता तो मनोरंजन की दृष्टि से ही कथा सुनता है, परन्तु सन्त की सुनने की शैली भिन्न ही होती है। बहुत थोड़ी अवस्था से ही मुझे सन्तों की कृपा प्राप्त रही है। स्वामीजी महाराज के आमंत्रण से भी मुझे उसी हार्दिक आनन्द तथा सन्तोष की अनुभूति हुई और प्रभु की कृपा से यह क्रम निरन्तर पच्चीस वर्षों तक चलता रहा। जब स्वामी आत्मानन्दजी महाराज ब्रह्मलीन हो गये, तो मेरे मन में एक बार थोड़ी हिचकिचाहट थी कि क्या वैसा वातावरण बनना अब सम्भव होगा? या फिर अब इस परम्परा का विराम कर देना चाहिए। किन्तु हमारे श्रद्धेय स्वामी गौतमानन्दजी महाराज ने स्नेह से आमंत्रित किया और यहाँ आकर उसी सत्यता की अनुभूति हुई, जिसका वर्णन 'मानस' में किया गया है। बहुधा लोग कहते हैं कि आजकल अच्छे सन्त मिलते ही नहीं, परन्तु गोस्वामीजी का दावा है कि सन्त प्रत्येक देश में, प्रत्येक काल में और प्रत्येक व्यक्ति के लिए सुलभ है –

सबहि सुलभ सब दिन सब देसा।। १/२/१२

पिछले वर्ष भी यहाँ आकर यही अनुभूति हुई कि सन्त का शरीर बहिरंग दृष्टि से रहेगा या नहीं, परन्तु उसका सन्तत्व विविध माध्यमों से प्रकट होता रहता है। बड़े ही आनन्द तथा सन्तोष की अनुभूति हुई। फिर जब इस वर्ष परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज की ओर से यह आमंत्रण मिला, तो स्वभावत: उसे सहज रूप से ही स्वीकार करने में ही मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई।

इस आश्रम में बोलना तो अपने आप में बड़ी धन्यता की बात है। भगवान श्रीरामकृष्ण, स्वामी विवेकानन्दजी ने उनके माध्यम से जिस भावना तथा क्रिया का सामंजस्य किया, वह इन आश्रमों के द्वारा चरितार्थ हो रहा है। वैसे तो सर्वत्र ही रामकथा के सन्दर्भ में बोलना कल्याणकारी आनन्ददायी लगता है, परन्तु यहाँ वह आनन्द न जाने कितना गुना बढ़ जाता है।

मैं जो कहता हूँ कि प्रभु ही बोलने वाले हैं, यह मेरे लिए कोई काव्य या नम्रता की भाषा नहीं है। यही मेरी प्रतिक्षण की अनुभूति है। श्रोता आप ही नहीं, मैं भी हूँ। भेद इतना ही है कि आप नीचे बैठकर सुनते हैं और मैं ऊपर बैठकर। एक रूप में मैं आपको वक्ता दिखाई देता हूँ और दूसरे रूप में श्रोता हूँ। ऐसे भिन्न-भिन्न रूपों में प्रभु अपना परिचय देते हैं कि मैं विस्मित रह जाता हूँ और अब भी जब दृष्टि जाती है, तो सचमुच यही लगता है कि 'मानस' में जो चरित्र वर्णित हुआ है, यह अनन्त है –

हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।। १/१४०/५

वह सत्य ही है। तो ऐसी स्थिति में प्रभु ने एक ऐसे

व्यक्ति को माध्यम चुना, जिसमें कृपा की उपलब्धि के लिए जो शून्यता चाहिए, उसे छोड़कर और कुछ नहीं है। तो इसे मैं वस्तुत: अपनी विशेषता के रूप में देखूँ, तो यह मेरी धृष्टता होगी। मैं प्रभु का स्मरण करता हूँ कि उन्होंने एक तुच्छ व्यक्ति को माध्यम बनाकर रामकथा को देखने के लिए एक भिन्न दृष्टि भी दी।

जो प्रसंग चल रहा था, अब बहुत संक्षेप में उसी का एक विहंगावलोकन करने का प्रयास किया जायेगा।

वस्तुत: एक ओर तो शास्त्रों में पग-पग पर धर्म की महिमा का गायन किया गया है और दूसरी ओर देश या विदेश में कहीं भी जब समाज पर दृष्टि जाती है, तो यह भ्रम होने लगता है कि धर्म के विषय में जो कुछ कहा गया है, क्या वह यथार्थ है? धर्म के नाम पर जो कुछ होता है, उसे देखकर कुछ लोगों को भ्रम होता है और कई लोगों के मन में विद्रोह की भावना उत्पन्न होती है। परन्तु जब आप गहराई से दृष्टि डालेंगे, तो आपको लगेगा कि वस्तुत: धर्म की महिमा तो यथार्थ ही है, परन्तु वास्तविक धर्म कितने व्यक्तियों के जीवन में प्रतिष्ठित हो पाता है!

मैंने सुना है, कई लोग कहते हैं कि रावण तो महान् धाार्मिक पुरुष था और उसका जो वर्णन तुलसीदासजी ने किया है, वह रावण के प्रति बहुत बड़ा अन्याय है। वे लोग कहते हैं – जिसके यहाँ स्वयं ब्रह्मा वेदपाठ करते हों, जो नित्य भगवान शंकर की पूजा करता हो, जिसने भगवान शंकर को अपना सिर काटकर चढ़ा दिया हो, जो समस्त शास्त्रों का प्रकाण्ड पण्डित हो, क्या उस रावण के जीवन में धर्म सुप्रतिष्ठित नहीं है? हम उसे अधार्मिक कैसे मान लें?

जब यह बात कही जाती है या जब ऐसा लगता है, तो इसका तात्पर्य यह है कि हमने धर्म का अर्थ धार्मिक क्रिया से ले लिया है। कुछ क्रियाओं के माध्यम से हम व्यक्ति को धार्मिक होने का प्रमाण-पत्र दे देते हैं। यदि कोई नित्य स्नान करे, पूजा-पाठ करे, नाना प्रकार के उपवास करे, तो सहज भाव से लोग कह देते हैं कि यह बड़ा धार्मिक है। वैसे ये भी धर्म के ही अंग हैं, परन्तु क्या क्रिया ही धर्म है? क्या केवल क्रिया के माध्यम से ही धर्म का निर्णय किया जा सकता है? वस्तुत: क्रिया के माध्यम से जो धर्म की व्याख्या है, वही हमारी भ्रान्ति का कारण बनती है और उसी से समाज में ऐसी वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, जो बड़ी घातक हैं।

आप एक व्यक्ति की कल्पना कीजिए, तो बाहर से तो आपको उस व्यक्ति का शरीर ही दिखाई देगा। पर क्या शरीर ही व्यक्ति है? जब आप एक शव को देखते हैं, तो उसके सारे अंग-प्रत्यंग, सारा शरीर तो जैसा-का-तैसा ही रहता है, परन्तु क्या उस शव को आप बनाए रखने की चेष्टा करेंगे? आप तो उतावले हो जाते हैं कि शव को यथाशीघ्र जला दिया जाय या दफना दिया जाय। इसका एक ही कारण है, वह यह कि जब तक देह के साथ प्राण विद्यमान न हो, तब तक उसका कोई अर्थ नहीं है।

एक ओर तो है शरीर, दूसरा है प्राण और तीसरा वह आत्म-तत्त्व; जो सबका परम प्रकाशक है। वह तो सबके मूल में प्रकाशक के रूप में विद्यमान है ही। तो व्यक्ति का पूर्ण परिचय यह है कि जिस देह में आत्मतत्त्व की अनुभूति हो, जहाँ प्राण शरीर को गति और शक्ति दे रहा हो और उससे शक्ति और गति प्राप्त करके शरीर के द्वारा जब सत्कर्म किया जाता है, तो इसी में मानो एक व्यक्ति की परिपूर्णता है। ठीक ऐसा ही धर्म के क्षेत्र में भी है। **धर्म की क्रियाएँ मानो उसका शरीर है; धर्म के पीछे जो भावना है, वह मानो उसका प्राण है और धर्म के पीछे जो विवेक है, वही मानो उसकी आत्मा है।** विवेक, भावना और क्रिया – इन तीनों का जिसमें सामंजस्य हो, वही परिपूर्ण व्यक्ति है और उसी की हम पूजा करते हैं, सम्मान करते हैं।

समस्या यही है कि जब हम अनेक लोगों को धार्मिक मान बैठते हैं, फिर दूसरों को कम और स्वयं को बहुत अधिक धार्मिक मान बैठते हैं। दूसरों को तो हम लोग बड़ी कठिनाई से प्रमाण-पत्र देते हैं, पर सबसे पहले हम स्वयं को ही प्रमाण-पत्र देते हैं कि हम तो धार्मिक हैं ही। परन्तु इस पर विचार करके देखें, तो यही लगता है कि हम तो शव की पूजा कर रहे हैं। जिस धर्म में प्राण नहीं है, जिस धर्म के पीछे विवेक नहीं हैं, उसके शरीर को ही यदि हम पकड़े रहने की चेष्टा करें, तो उसमें से दुर्गन्ध आए बिना नहीं रहेगी। आप किसी शव को रख लीजिए, तो कुछ दिनों बाद ही उसमें दुर्गन्ध आने लगेगी। इसीलिए, मानो यह बताने के लिए भगवान श्रीराम अवतरित होते हैं कि समग्र धर्म क्या है और उनके चरित्र के माध्यम से धर्म के शरीर, धर्म के प्राण और धर्म की आत्मा का परिचय मिलता है।

रामायण में आप पढ़ते हैं कि हनुमानजी ने लंका को

जला दिया। स्मृति-शास्त्रों में लिखा हुआ है कि दूसरे का नगर जलानेवाला आततायी है और शास्त्र यह भी कहते हैं कि आततायी को मारने में कोई पाप नहीं है। तो क्या लंका को जलाकर हनुमानजी ने आततायी का कार्य नहीं किया? इसका उत्तर यह है कि हनुमानजी ने जाते ही लंका को थोड़े ही जला दिया! पहले उन्होंने लंका को ऊपर से देखा, नीचे उतरकर देखा, दिन में देखा, रात में देखा, घर-घर में पैठकर देखा, उसके बाद ही तो लंका को जलाया। इसका अर्थ क्या है? जब किसी वैद्य से मृत्यु का प्रमाण-पत्र माँगा जाता है और वह रोगी की जाँच करने आता है, तो वह बड़ी सजगता से, हर तरह से जाँच करता है कि कहीं कोई प्राण का चिह्न है क्या? जब कोई चिह्न नहीं दिखाई देता, तो कहता है कि अब तो इस शव को जलाना ही उचित है।

इसी प्रकार हनुमानजी भी लंका की परीक्षा कर रहे थे। उन्होंने बड़े धैर्य से परीक्षा की कि कहीं प्राण है क्या? जब उन्होंने देखा कि यह तो निष्प्राण है और लंकावासी उसी शव की पूजा किए जा रहे हैं, उसी शव के साथ लिपटे हुए हैं, तो उन्हें लगा कि अब तो इसको जलाकर ही चलना उचित है, इससे बढ़कर अनर्थ क्या होगा कि यहाँ एक शव पड़ा रहेगा। यह एक सांकेतिक भाषा है कि हमारा जो निष्प्राण धर्म होता है, विवेकशून्य धर्म होता है, उसकी अन्तिम परिणति तो उसी रूप में होनी चाहिये और होती भी है। हनुमानजी बड़े सजग हैं। बस, एक ही व्यक्ति के जीवन में उन्हें प्राण दिखाई पड़ा और आप देखते हैं कि वे इतने सावधान थे कि सारी लंका तो जल गई, परन्तु विभीषणजी का घर छोड़ दिया –

जारा नगरु निमिष एक माहीं।
एक बिभीषन कर गृह नाहीं।। ५/२६/६

जलाने वाले कितने सावधान रहे होंगे! सारे नगर को जला दिया और एक व्यक्ति का घर छोड़ दिया। रामायण की सांकेतिक भाषा में धर्म का प्राण तो मानो भावना और भक्ति ही है। इसलिए सूत्र दिया गया कि जिनके जीवन में भक्ति नहीं है, वे प्राणी जीते हुए भी मुर्दे के समान हैं –

जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी।
जीवन सव समान तेइ प्रानी।। १/११२/५

वस्तुत: धर्म की समग्र व्याख्या एक बहुत जटिल और लम्बी प्रक्रिया है। पहले हम इतना तो समझने की चेष्टा करें कि धर्म की आत्मा क्या है? धर्म का प्राण क्या है? और धर्म की कौन-सी क्रिया को हम धर्म के रूप में देखें? तो आप इस दृष्टि से विचार करके देखें।

रामायण में जो प्रसंग प्रारम्भ हुआ है, वह पहली कक्षा से प्रारम्भ करके उसको अन्तिम रूप दिया गया है। उसमें एक क्रम है। एक ओर रावण का चरित्र है, जिसमें धर्म का विकृत पक्ष दीख पड़ता है। वह तपस्या तो करता है, पर उसकी तपस्या का उद्देश्य क्या है? – शरीर को अमर बनाना। इसमें कैसा विरोधाभास है? तपस्या माने – शरीर को सुखाना। शरीर को सुखाने की पीछे यह भावना है कि व्यक्ति बहुधा विषयों के द्वारा बुराई की दिशा में चल पड़ता है और वह शरीर की आज्ञा का पालन करता है; दूसरी ओर तपस्या का अभिप्राय यह है कि हम शरीर की इच्छा से न चलें, अपितु शरीर को अपनी इच्छा के अनुकूल चलाने की चेष्टा करें। यह तो बड़ी उच्चकोटि की धारणा है। शरीर तथा इन्द्रियों पर हमारा अधिकार होगा, तभी तो हम तपस्या कर सकेंगे। इससे यही लगता है कि तपस्या के द्वारा व्यक्ति शरीर से ऊपर उठने की चेष्टा कर रहा है।

रावण ऐसी तपस्या करता है कि उसके शरीर में केवल हड्डी शेष रह जाती है। जब भगवान शंकर के साथ ब्रह्माजी भी सामने आकर प्रगट हुए, तो पहले रावण ने यही सोचा कि मैंने तो केवल शंकरजी को ही बुलाया था, ये कहाँ से टपक पड़े! उसे प्रसन्नता नहीं हुई। वह सुन चुका था कि शंकरजी बड़े भोले-भाले हैं और वे यह नहीं देखते कि कौन व्यक्ति किस वस्तु का अधिकारी है। वे तो प्रसन्न होकर मुँहमाँगा वरदान दे दिया करते हैं। इसीलिए असुर लोग शंकरजी पूजा करते हैं। सुर लोग तो शंकरजी की पूजा करते ही हैं, पर असुर भी यह सोचकर शंकरजी की पूजा करते हैं कि इनसे तो जो माँगेंगे, वही दे देंगे –

देव बड़े दाता बड़े संकर बड़े भोरे।। विनय. ८

(क्रमशः)

विषयसुख के प्रति आसक्ति जितनी कम होती है, भगवान के प्रति भक्ति उतनी ही बढ़ती जाती है ।

– श्रीरामकृष्ण परमहंस

सारगाछी की स्मृतियाँ (४२)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

३१-०८-१९६०

एक मठ में आय बहुत कम होती थी और तीर्थ स्थान होने के कारण साधु लोग वहाँ जाते रहते थे। आय कम होने के कारण वहाँ के महन्त साधुओं को अधिक दिन रखने में संकोच करते थे। इसी सम्बन्ध में महाराज ने कहा – हमारे यहाँ सब लोग एक आश्रम से दूसरे आश्रम में घूमने जाते हैं, जैसे गृहस्थ लोग अपने स्वजन-सम्बन्धियों के यहाँ घूमने जाते हैं। बिना सूचना दिये उपस्थित हो गए। भिक्षा में भोजन कहाँ से आए, कहाँ सोने की जगह दें, क्या खाने को क्या दें। आजकल तो पैसा है, आश्रम का असली रूप भूल गए हैं। हमारे लिये उचित यही है कि जो, जब भी, जहाँ कहीं जाए, बहुत असम्भव न हो, तो पहले अनुमति ले लेनी चाहिए। कम-से-कम सूचना देकर वहाँ जाना चाहिए।''

४-९-१९६०

प्रश्न – यदि कभी किसी व्यक्ति से आसक्ति हो जाय, तो क्या करना चाहिए?

महाराज – वह स्थान छोड़ देना चाहिए। जो ठाकुर के चिन्तन के मार्ग में बाधक हो रहा है, उसको महाशत्रु समझना। किन्तु यदि किसी के गुणों पर मुग्ध होते हो, तो उससे कोई अनिष्ट नहीं होता। उससे उन्नति होती है। यह सब आकर्षण उनको ही होता है, जिनके मन को उत्कृष्ट विचार नहीं मिलता, जिनका स्तर ऊँचा नहीं होता है। जो नितान्त निम्न स्तर पर हैं, वे ही स्त्री के बदले निकृष्ट विचारों से संतुष्ट होते हैं। तुम सब बुद्धिमान हो, शास्त्र पढ़ते हो, तुम लोगों को यह सब क्यों होगा? इसके अलावा हम लोगों में प्रेमी लोगों का अभाव है? ठाकुर, माँ, स्वामीजी, ठाकुर के पन्द्रह संन्यासी-शिष्य, इनके अतिरिक्त और भी तो हम लोग कितने संन्यासी हैं। प्रेम कितना करोगे? प्रेम के आकर्षण से ही तो घर-बार छोड़े हो। जब मन को थोड़ा भी समेट न सको, तो ठाकुर का तत्त्व, रूप और लीला का नित्य अभ्यास करते रहो। उससे ही देखोगे कि ठाकुर के माधुर्य और ऐश्वर्य में डूब जाओगे, अन्य किसी के प्रति भी मन आकृष्ट नहीं होगा।

६-९-१९६०

महाराज – अपने पूर्वाश्रम में मैंने साधना के नाम पर नशा, हुल्लड़बाजी करते देखा है। वही सब देखकर मैं निन्दक बन गया था। पान, बीड़ी, तम्बाकू, चाय, फुटबाल खेलना, सभी चीजों में ही मेरे मन को कैसा बन्धन लगता था। इन सब चीजों से नया आकर्षण नहीं रखना चाहिए। क्यों भाई, हमारा मन क्या इतना खाली है कि अवलम्बन करने के लिये कुछ भी नहीं है? गीता का ''यतो यतो निश्चरति'' श्लोक मुझे बहुत प्रिय है। इसीलिए कहता हूँ कि अच्छे परिवेश की प्रतीक्षा में बैठे रहने से कुछ नहीं होगा। जो केवल यह कहता है, हमारी परिस्थिति अनुकूल नहीं चल रही है, उसके लिए यह समझना होगा कि वह इच्छा करके ही कुछ होने का मार्ग बन्द कर देना चाहता है।

प्रश्न – कार्य के लिये एक-आध झूठ-बोलना क्या चल सकता है?

महाराज – हम लोग संन्यासी हैं, हमें झूठ बोलने की क्या आवश्यकता है? ऐसा थोड़ा कार्य लूँगा जिसे चित्र की भाँति सुन्दर ढंग से, उपासना की भावना से, पूजा के भाव से कर सकूँ। ''**स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्** – थोड़ा सा धर्माचरण भी महान रक्षा करता है।'' किसी का रंचमात्र भी अनिष्ट न हो तथा मैं भी प्राणपण से चेष्टा करूँगा, जिससे जितनी जल्दी हो सके, उस झूठ से मुक्त हो सकूँ। देखो, मनुष्य कितनी ही बातें कहता है, उसकी बातों का कोई मूल्य नहीं है। जो शास्त्रानुकूल, युक्तिसंगत हो, उसे ही ग्रहण करना। इसके अतिरिक्त दूसरी सभी बातों को फाइल में रख देना, सुयोग आने पर देख लेंगे। जो सब कुकर्म सुनते हो, उसका कारण है – मन के भीतर की सूक्ष्म वासना की वृत्तियों को न जान पाना। ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग इन चारों के अभाव से ही यह संकट आता है। यदि

व्यक्ति खूब स्वाध्याय करे, तो अच्छा होगा । उससे चारों योगों का विस्तार से समझना हो जाएगा । बाद में चार वर्ष उसकी साधना करे । फिर दस वर्षों के निरन्तर अभ्यास से वह सुन्दर चरित्रवान बनकर निकलेगा। जितनी कृत्रिमता है, वह सब साधना के प्रभाव से दूर हो जाएगी।

महाराज – किशोरी-भजन (राधा-उपासना) वैष्णवों में बहुत प्रचलित था। वृन्दावन में एक साधक का एक शिष्य था। उसके घर एक ग्वालिनी दूध देती थी। गुरु ने देखा कि शिष्य उसके साथ बैठकर प्राय: गप करता तथा कुछ देर तक उसे बैठाए रखता। गुरु ने ग्वालिनी से कहा, ''देखो, तुम कुछ दिन मत आओ, किसी दूसरे के द्वारा दूध भेज देना।'' शिष्य तो छटपटाने लगा। तब गुरु ने कहा, 'तुम इसी ग्वालिनी का ध्यान करो।'' वह शिष्य साधक था, 'वह अपने मन की स्थिति को समझ गया। मन जब धीरे-धीरे स्थिर होने लगा, तब वह उस ग्वालिनी के प्रति आकर्षण को भूल गया।

वैष्णव धर्म प्रेम-प्रेम की रट लगाकर इतने नीचे चला गया था, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। किशोरी-भजन उसी में से एक है। श्रीरामकृष्ण-वचनामृत में वैष्णवचरण के प्रसंग में उल्लेख है। किशोरी-उपासना के नाम पर कितना अध:पतन हो गया था कि सब कहने लगे थे कि चैतन्य देव ने भी किशोरी-उपासना की थी। प्रमाण के तौर पर कहते हैं कि सार्वभौम (चैतन्य के शिष्य) ने कहा था, 'आज साटि (विधवा) हो।'' सार्वभौम ने चैतन्य देव को दोपहर भोजन हेतु निमंत्रित किया है। चैतन्य देव का शरीर बलिष्ठ था। मनोनुकूल भोजन की व्यवस्था करके सज-धजकर उन्हें निमंत्रित करने जायेंगे, इसी समय उनके दामाद ने भोज आयोजन देखकर व्यंग्य किया। मन में व्यथित होकर सार्वभौम ने सम्भवत: यही कहा, ''आज साटी (एक महिला) विधवा हो। दुष्ट वैष्णवों ने कुप्रचार कर दिया – सार्वभौम की कन्या साटी के विधवा होने पर चैतन्यदेव उसे लेकर किशोरी-उपासना करेंगे। तुम समझे कि यह कितनी प्रबल मूर्खता है।

८-९-१९६०

प्रश्न – क्या ऐसी अवस्था होती है – कर्म न करके भी ज्ञान, भक्ति, योग में रह सकूँ?

उत्तर – वहाँ भी तो कर्म रहता है। फिर भी व्यावहारिक क्षेत्र में दस लोगों के साथ मिलकर, कार्य के बीच अपना परीक्षण करके देखा जा सकता है। प्रथमत: जिसकी जिस ओर रुचि होती है, उसको उसी रुचि की उन्नत अवस्था में ले जाना पड़ता है – उसी कर्म को उपासना में परिवर्तित कर देना होता है। किन्तु कार्य को कम करने से नहीं होगा, कार्य के प्रति आसक्ति को कम करना होगा। आसक्ति जितनी कम होगी, कर्म-स्पृहा भी उतनी ही कम होती जायेगी।

गीता में तीन गुण वर्णित हैं, जानते हो? सत्त्व, रज और तम। इनके क्या कार्य हैं? सत्त्व सुख चाहता है, सुन्दर वस्तुएँ चाहता है। तम में कुछ चुनकर लेने का भाव नहीं होता। रज कुछ-न-कुछ करना चाहता है। और भी है – सत्व का रज, तम का रज।

सत्व का रज – कार्य आरम्भ करने के पूर्व योजना बनाकर आकलन करता है। क्या करना है, कौन करेगा, करने से क्या लाभ है, उपयुक्त परिवेश है या नहीं, मेरी अनुपस्थिति में भी यह कार्य करना सम्भव होगा कि नहीं, यह सब सोच-विचार करने के बाद कार्य करता है।

तम का रज – बहुत से कार्यों में लग जाता है, मस्तिष्क संतुलित नहीं रख पाता, किसी कार्य पर भी सही दृष्टि नहीं रख पाता। कहने पर सफाई देगा – ठाकुर का कार्य है, वे ही ठीक कर लेंगे। **(क्रमश:)**

एक सुनार बीमारी के कारण शय्या पर लेटा हुआ था। कई महीनों से वह बाजार नहीं जा सका था, इसलिए उसे सोना और सोने के बाजार-भाव का ही विचार आता रहता था। उसका अन्तकाल आया। बुखार बढ़ता जा रहा था। डॉक्टर ने आकर बुखार नापकर कहा कि १०५ डिग्री है। सुनार समझा कि किसी ने सोने का भाव बताया है। वह अपने पुत्र से कहने लगा कि बेच दे, बेच दे। हमने अस्सी के भाव में लिया था। अब १०५ हुआ है, तो बेच दो। ऐसा बोलते-बोलते ही वह मर गया। सुनार ने सारा जीवन सोना खरीदने-बेचने और सोने के विचार में गुजारा था, इसलिए अन्तकाल में उसे सोने का ही विचार आता रहा।

(भागवत रहस्य, श्री डोंगरेजी महाराज)

शास्त्रमय श्रीरामकृष्ण

स्वामी कृतार्थानन्द
रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ

(गतांक का शेषांश)

ठाकुरजी एक दूसरी कहानी कहते थे। बैगन बेचनेवाला, कपड़ा बेचनेवाला और जौहरी के द्वारा हीरे के मूल्य के निर्धारण की कहानी।[१२] यह कहानी भी आचार्य शंकराचार्यजी के द्वारा लिखित छान्दोग्य उपनिषद के एक मन्त्र (१/१/१०) के भाष्य के ही समान है। वहाँ शंकराचार्यजी दृष्टान्त देते हुए कहते हैं — ''संसार में देखा जाता है कि एक पेशे से जौहरी रत्नों को ठीक से पहचानने के कारण एक शिकारी से बहुत अधिक धनार्जन करता है। अर्थात् उस शिकारी के हाथ में मूल्यवान रत्न मिलने पर भी वह उसका सही मूल्य नहीं समझ सकेगा।[१३] एक दूसरे स्थान पर ठाकुरजी कहते हैं, ''जब जगत का नाश होता है, तब महाप्रलय होता है, तब माँ सृष्टि के सभी बीजों को बीन कर रख देती हैं। माँ ब्रह्ममयी सृष्टि के नाश होने के बाद वैसे ही सभी बीजों को रख देती हैं। सृष्टि के बाद आद्याशक्ति संसार में ही रहती हैं।[१४] ऐसी ही एक बात आचार्य शंकर ने अपने ब्रह्मसूत्र (१/३/३०) भाष्य की व्याख्या करते समय कहा है, ''जगत का नाश अथवा लय हो जाने पर उसकी अन्तर्निहित शक्ति, बीज के रूप में छिपी रहती है। पुन: बाद में सृष्टि के समय वही शक्ति अभिव्यक्त हो जाती है। ठाकुरजी एक अन्य उदाहरण देते हैं, ''किसी ने कहा था कि मेरे मामाजी के घर की गोशाला में घोड़े हैं। इससे समझना होगा कि वहाँ बिलकुल ही घोड़ा नहीं है। क्योंकि गोशाला में घोड़े नहीं रहते हैं। शंकराचार्य जी ने ब्रह्मसूत्र के सूत्र क्र. १/४/१ के भाष्य में भी वही बात कही है, ''यदि बिलकुल अबोध न हो, तो कभी कोई अस्तबल में गाय को देख कर उसे घोड़ा नहीं कहेगा।'[१७] ठाकुरजी दूसरे स्थान पर कहते हैं — ''गाय के किसी भी अंग का स्पर्श करो, उसे गाय को ही स्पर्श करना कहा जायेगा। सींग को छूने से भी गाय को ही छूना हुआ। किन्तु दूध गाय के थन से ही निकलता है।[१८] शंकराचार्यजी ने ब्रह्मसूत्र के सूत्र क्र. २/१/१८ के भाष्य में ठीक ऐसी ही बात कही है – ''यदि पूर्ण अपने प्रत्येक अंश के भीतर सम्पूर्ण रूप में ही विद्यमान रहता, तो प्रत्येक अंश में उसकी क्रिया भी समान रूप से चलती रहती। अर्थात् गाय के सींग से भी उसकी थन की तरह ही दूध निकलता। किन्तु वास्तव में वैसा नहीं होता है।[१९] शंकराचार्य जी ब्रह्मसूत्र के सूत्र क्र. १/३/२२ के भाष्य में कहते हैं – ''चन्द्र, तारा इत्यादि प्रकाशवान होने पर भी दिन में सूर्य के प्रकाश में दिखाई नहीं पड़ते हैं।[२०] ''ईश्वर हैं कि नहीं'' इस बात को भक्तों को समझाने हेतु ठाकुरजी उदाहरण दे रहे हैं – ''दिन में तारे नहीं दिखते हैं, तो क्या ऐसा कहते हैं कि तारे नहीं हैं? सूर्यास्त होते ही वे सभी चमकने लगते हैं।''

राजा के पास पहुँचने के लिये पहले द्वारपाल को निवेदन या उपहार से प्रसन्न करने पर वही राजा के पास पहुँचा देगा, इस बात को भी ठाकुरजी ईश्वर-प्राप्ति की साधना के प्रसंग में कहते थे। छान्दोग्य उपनिषद के मंत्र क्र. ३/३/१ के शांकर-भाष्य में भी वैसा ही दृष्टान्त है – ''राजा के द्वारपालों को संतुष्ट करने पर वे लोग ही राजा के पास पहुँचाने में सहायता करेंगे।[२१] इसके अतिरिक्त शंकराचार्यजी बृहदारण्यक उपनिषद के मंत्र क्र. ४/३/३७ के भाष्य में कहते हैं – ''जब कोई राजा अपने राज्य के किसी स्थान का निरीक्षण करने जाते हैं, तब उनकी सेवा के लिये पहले से ही लोग, भोजन और भवन आदि तैयार करके रखते हैं, जिससे राजा को कोई असुविधा न हो।'' ठाकुरजी ने इस उपमा को ही अपने जमींदार बाबू के गरीब प्रजा के घर

में पदार्पण के उदाहरण द्वारा प्रकट किया है। ठाकुरजी ने एकाग्रता को समझाने के लिये कहा – "एक व्याध मारने के लिये निशाना लगा रहा है। उसके पास से दूल्हा चला जा रहा है, साथ में बराती, कितने रोशनाई, गाजे-बाजे, गाड़ी-घोड़ा कितनी देर से चले जा रहे हैं, किन्तु उसे उसका बोध नहीं है, वह जान नहीं पाया कि पास से दूल्हा चला गया।[२३] शंकराचार्यजी भी ब्रह्मसूत्र के सूत्र क्र. ३/२/१० के भाष्य में प्राय: ऐसा ही उदाहरण दे रहे हैं। वे वर्णन कर रहे हैं – "व्याध तीर में धार देते समय इतना एकाग्र रहता है कि वह अन्य किसी भी व्यक्ति या वस्तु को न ही देख पाता है और न सुन पाता है। वह कहता है कि मैं केवल बाण में ही तन्मय था।"

शास्त्रों के पार जाना

अब तक हम लोग श्रीरामकृष्ण देव के शास्त्रानुरूप जीवन की चर्चा कर रहे थे। उनके जीवन की समीक्षा करने पर देखा जाता है कि मानो शास्त्रों ने ही उनको पकड़ कर रखा था। वास्तव में लोक में प्रचलित है, संन्यासी शास्त्र शिरोमणि होकर विराजमान रहते हैं। उसका अर्थ है कि संन्यासी या साधक शास्त्र का आचरण करते-करते शास्त्र से भी बड़े हो जाते हैं। उनके जीवन के पन्ने ही शास्त्र में परिणत हो जाते हैं। अर्थात् वे शास्त्रों से भी महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। उस अवस्था में पहुँचने पर उन्हें सर्वदा शास्त्रानुसार चलने का प्रयोजन नहीं रहता है। फिर भी प्राय: वे लोकशिक्षा के लिये शास्त्रों का अनुशासन सर्वदा मान कर चलते हैं। 'लोकशिक्षा' शब्द का श्रीमद्भगवद्गीता में 'लोक संग्रह' के रूप में उल्लेख किया गया है (३/२०)। शंकराचार्यजी ने अपने भाष्य में इसका अर्थ किया है — **लोकस्य उन्मार्गप्रवृत्ति निवारणं** अर्थात् साधारण मनुष्य की प्रवृत्ति को नीचे से ऊपर की ओर, पाप से पुण्य की ओर और अशुभ से शुभ की ओर, बुराई से भलाई की ओर ले जाने का नाम ही लोक-संग्रह है।

किन्तु किसी विषम परिस्थिति में ही ये महापुरुष इन नियमों का व्यतिक्रम करते हैं। जब मानव-जीवन का मार्ग किसी भी एक चौराहे या पँचराहे के मिलन-स्थल पर पहुँच कर आगे के गन्तव्य स्थल का निर्णय नहीं ले पाता, तब वह भ्रमित हो जाता है। तब आध्यात्मिक पुरुष ही उन लोगों को सन्मार्ग दिखाते हैं। सही मार्ग पर अग्रसर करते हैं। श्रीरामकृष्ण देव ने भी ठीक वही किया है। हम लोग जानते हैं, अहंकारशून्यता की साधना में वे कितने निपुण थे। जिस दिन दक्षिणेश्वर के विष्णु-मन्दिर के पुजारी ने गिरकर विष्णु-मूर्ति के पैर को तोड़ डाला और भक्तिमती रानी रासमणि ने व्याकुल होकर भग्न-मूर्ति की पूजा करना शास्त्रविहित है कि नहीं, इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध पण्डितों के विचारों को जानने की इच्छा व्यक्त की, तब उन सभी लोगों ने एक वाक्य में सहमति प्रदान की कि भग्न-मूर्ति को फेंक कर नयी मूर्ति बनाकर स्थापित करनी होगी। किन्तु रानी रासमणि की अन्तरात्मा ने उसमें सम्मति नहीं दी। इतने दिनों की प्रतिष्ठित मूर्ति, जिसकी प्राणपूर्ण अनन्य निष्ठा-भक्ति से पूजा होती चली आ रही है, उसके एक छोटे से अंग के टूट जाने के कारण उसे फेंक देना, इसे भक्तिमती रानी रासमणि का हृदय विरोध करने लगा। किन्तु वे तो एक साधारण नारी हैं। वे शास्त्रों के राजदण्ड सम नियमों को मानने के लिये विवश हैं !

इस प्रकार के द्वन्द्वों से व्यथित रानी रासमणि के शुद्ध मन में अचानक 'छोटे भट्टाचार्यजी' (श्रीरामकृष्ण देव) की याद आयी। आश्चर्य ! विद्वान पण्डितों को छोड़कर शास्त्रविधि की उपेक्षा करके एक निरक्षर, भाव में मतवाले पुजारी की सम्मति लेना ! क्या यह पागलपन नहीं है? नहीं, तात्त्विक विश्लेषण करके देखा जाता है कि रानी ने यथार्थ कर्तव्य का पालन ही किया था। हमारे शास्त्र इस विषय में कहते हैं कि बुद्धि का निवास हृदय में होता है, इसलिये बुद्धि से बड़ा हृदय है। शंकाराचार्यजी ने बृहदारण्यक उपनिषद के मन्त्र क्र. ५/१४/४ के भाष्य में कहा है – "एक वस्तु किसी दूसरी वस्तु का आश्रय स्थल होने से पहली वस्तु सर्वदा ही अधिक शक्तिशाली होती है।[२५] यह भी देखा जाता है कि आध्यात्मिक उपलब्धि अथवा दर्शन को दृढ़भूमि पर स्थापित करने के लिये अत्यन्त शक्तिशाली और अप्रतिरोधी तीन अस्त्रों की सहायता लेनी पड़ती है। ये तीन चीजें हैं – श्रुति (शास्त्र वचन), युक्ति (बौद्धिक विचार) और अनुभूति। इनमें से युक्ति विचार-विश्लेषण का विषय है तथा अनुभूति हृदय की क्रिया है। अनुभूति में भावुकता का कुछ स्थान रहने पर भी हृदय के सम्बन्ध में सम्पूर्ण भावुकताहीन नहीं है। यहाँ पर द्रष्टव्य है - श्रुति, युक्ति और अनुभूति, क्रमानुसार जैसे नीचे की सीढ़ी से ऊपर की सीढ़ी में जाने के सदृश हैं। श्रुतिवाक्य से युक्ति बड़ी है अनुभूति युक्ति से बड़ी है।

जब रानी रासमणि ने श्रीरामकृष्ण देव का विचार जानने के लिए भेजा, तो ठाकुर ने देखा कि सभी पण्डित एक स्वर में श्रुति और युक्ति का ही पक्ष ले रहे हैं। तृतीय स्तर को लेकर किसी ने भी विचार-विमर्श नहीं किया। दूसरी ओर

रानी रासमणि केवल भक्ति के आवेश में अनुभूति को पकड़ कर रखना चाहती हैं। यद्यपि उनमें पण्डितों के विधान को अस्वीकार करने की क्षमता नहीं है। इसलिये ठाकुर भक्त की मनोकामना को पूर्ण करने के लिये रक्षक के रूप में रानी रासमणि के बुलाने पर आये। मानो, उन्होंने शास्त्रों के शीर्ष पर खड़े होकर शास्त्र के ऊपर मीमांसा की – "यदि रानी रासमणि के किसी दामाद का पैर टूट जाय, तो क्या उन्हें छोड़कर दूसरा दामाद ढूँढने जायेंगी या उसे ही चिकित्सा कराकर ठीक करने की चेष्टा करेंगी? उसी प्रतिमा को ठीक कराकर यथाविधि पूजा अर्चना की जाय।" मानो रानी रासमणि के सिर से एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया और आश्चर्य की बात है कि सभी पण्डितों ने चुपचाप इस अमोघ नियम को स्वीकार कर लिया। क्योंकि उस नियम की मीमांसा के पीछे एक अप्रतिरोध्य शक्ति सक्रिय है, जिसके सामने मरणशील मनुष्य की शक्ति बहुत थोड़ी-सी है !

श्रुति-माता ने स्वयं घोषणा की है कि ऐसे महामानव वेद को भी अवेद कर सकते हैं, इत्यादि। इसलिये वे वेद-वेदान्त-शिरोमणि के रूप में विराज करते हैं। यही शास्त्रों के पार जाने का तात्पर्य है। शास्त्र-विधि में युक्ति के ऊपर अनुभूति का स्थान होने के कारण ही लगता है कि स्वामी विवेकानन्द जी ने परवर्ती काल में नियम बनाया है कि बुद्धि और हृदय में संघर्ष होने पर हृदय को ही प्रमुखता देनी होगी।

ब्रह्मसूत्र के सूत्र क्र. ४/१/४ में कहा गया है, **'न प्रतीके न हि सः'**, अर्थात् बाह्य के प्रतीक के रूप में पत्थर, लकड़ी अथवा मिट्टी को आत्मा के रूप में देखना निषेध किया गया है। हमलोग प्रतीक उपासना से बहुत परिचित हैं। किन्तु उसमें निहित रहस्य बहुत से लोगों को ज्ञात नहीं है। कोई-कोई विशेष शिला या लकड़ी (जैसे शिवलिंग या शालिग्राम) किसी विशेष रूप में ईश्वर का स्मरण करा देती है। यह निम्न वस्तु के ऊपर उत्कृष्ट वस्तु का अध्यारोप है। इसी बात को श्रीशंकराचार्यजी ने ब्रह्मसूत्र के परवर्ती सूत्र क्र. ४/१/५ (ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्) के भाष्य में स्पष्ट रूप से कहा है – जैसे राजा के रथ के सारथि को लोग राजा कहकर ही उल्लेख करते हैं। वहाँ निम्न वस्तु में उत्कृष्ट वस्तु का अध्यारोप हुआ। किन्तु कभी भी राजा को सारथी के स्तर पर नहीं उतारा जाता है।[२६] इस तात्त्विक सारगर्भित सत्य को ठाकुरजी ने मास्टर महाशय को एक अत्यन्त निपुण शिल्पी की कूँची से अंतिम कलाकृति देकर समझा दिया। जब मास्टर महाशय ने विरोध के स्वर में कहा, किन्तु वे मिट्टी की मूर्ति तो नहीं हैं, तुरन्त ठाकुरजी उत्तर दे रहे हैं – "मिट्टी क्यों जी! चिन्मयी मूर्ति है।" अर्थात् मिट्टी से मूर्ति निर्मित होने पर भी पूजा के विषय में मिट्टी का कोई महत्त्व नहीं है। क्योंकि उस चिन्मयी रूप की कल्पना करके ही मूर्ति बनाई गयी है। मिट्टी की प्रतिमा पानी में घुल जायेगी, किन्तु उस चिन्मयी की मूर्ति चिरकाल तक हृदय को प्रकाशित कर विराजमान रहेगी। इस प्रसंग में ठाकुरजी ने मास्टर महाशय को और भी कहा, "तुमने मिट्टी की मूर्ति की पूजा की बात कही थी। यदि मूर्ति मिट्टी की ही हो, तो उस पूजा की भी आवश्यकता है। ईश्वर ने ही विभिन्न प्रकार की पूजा का आयोजन किया है। जिनका यह संसार है, उन्होंने ही अधिकारी-भेद से यह सब किया है। जिसके पेट में जो पचता है, माँ उसके लिये वैसा ही भोजन बनाती है।"

'श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग' नामक ग्रंथ से हम जान सकते हैं कि ठाकुरजी ने कैसे मथुरानाथ के हठ को इस सत्यवाणी द्वारा शान्त किया था – "इतने दिनों तक माँ ने बाह्य मूर्ति में विराजमान होकर तुम्हारी पूजा ग्रहण की हैं, अब से वे तुम्हारे हृदय में निवास करेंगी।" केवल इतना ही नहीं, इस निष्प्राण प्रतीक की श्रेष्ठ साधना से ब्रह्मदृष्टि करने की शास्त्रीय पद्धति को ठाकुर ने "शिवभाव से जीवसेवा" के रूप में अत्यन्त उत्कृष्ट कर्म-दर्शन में बदल दिया। यह दृष्टिकोण साधारण व्यक्ति को उसकी सीमा का अतिक्रमण कर अधिक गम्भीर, व्यापक और उच्चतर चिन्तन कर जीवन को सुगठित करने में सहायता करेगा। तब किसी स्त्री के रूप को देखकर केवल उसका चमड़ा, रक्त, मांस का स्मरण नहीं होगा। यहाँ तक कि उनकी आह्लादिनी शक्ति का भी अतिक्रमण कर मनुष्य का मन और अधिक गहराई में उसकी मातृसत्ता और दैवी-सत्ता के स्तर पर उठकर उसे देखेगा और पूर्ण मर्यादा में उसकी आराधना करेगा। एकमात्र तभी मानव अपनी सम्पूर्ण सीमाओं का अतिक्रमण करने में सक्षम होगा। यहाँ पर भी ठाकुरजी शास्त्र के पार जा चुके हैं।

ब्रह्मज्ञानियों का स्तर और श्रीरामकृष्ण देव

बहुत से लोगों को थोड़ी देर के लिये लग सकता है कि जो ईश्वरप्राप्त समाधिवान लोग हैं, उन लोगों में कैसे स्तर-भेद होता है? ईश्वर को ज्ञात करने से ही, तो सब कुछ प्राप्त हो गया, फिर क्या शेष रह गया? ठाकुरजी ने इसका सहज रूप से उत्तर दिया है – यदि एक बार कोई कलकत्ता में आ जाय, तो पूरा मैदान और एशियाटिक सोसायटी सब कुछ देख सकता है।[२८] ईश्वर हैं, इसे उनके सम्बन्ध में दूर

से जानना हुआ, इसे ज्ञान कहते हैं और उनके पास जाकर उनसे वार्तालाप कर उनकी कितनी बड़ी जमींदारी है, कम्पनी का कागज कितना है, इन सबके बारे में जानना, विशेष रूप से ज्ञात करना है, इसे विज्ञान कहते हैं।[२८] शंकराचार्यजी ने भगवद्गीता के भाष्य के कम-से-कम दो स्थानों (३/४१, ६/८) पर ज्ञान और विज्ञान की संज्ञा ठीक उसी प्रकार से दी है। उनके मतानुसार शास्त्र और आचार्य से आत्मा आदि के सम्बन्ध में शिक्षा प्राप्त कर, उन सबकी धारणा करना ही ज्ञान है और उसी आत्मा इत्यादि को विशेष रूप से अनुभव करना विज्ञान है।[३०] पुन: उन्होंने ६/८ श्लोक के भाष्य में भी प्राय: एक ही बात कही है – शास्त्रोक्त पदार्थों के सम्बन्ध में एक सामान्य अवधारणा को ज्ञान कहते हैं। शास्त्रोक्त पदार्थों का अपनी अन्तश्चेतना में अनुभव करने को विज्ञान कहते हैं।[३१] इसी स्वानुभूति को ही ठाकुरजी कहते हैं – 'दूध पीकर बलवान बनना।'[३२] इस सन्दर्भ में एक बात अप्रासंगिक होने पर भी बताना आवश्यक है। आश्चर्य का विषय यह है कि ठाकुरजी के द्वारा प्रदत्त विज्ञान और विज्ञानी की यह परिभाषा स्वयं शंकराचार्य जी की परिभाषा की प्रतिध्वनि होने पर भी, वर्तमान युग के तार्किक विद्वान पण्डित किसी तरह भी इसे शास्त्रानुमोदित नहीं स्वीकार कर सके। उन लोगों के मतानुसार विज्ञानी का भाव बौद्धों के द्वारा प्रवर्तित है, जो हिन्दू धर्म में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

जो भी है, जो ब्रह्म ज्ञानी हैं, केवल वे ही उस दुर्गम गन्तव्य लक्ष्य की प्रत्येक गली को जानते हैं। इसीलिये वे विश्वास के साथ कह सकते हैं – ब्रह्मविद्, ब्रह्मविद्वर, ब्रह्मविद्वरीयान और ब्रह्मविद्वरिष्ठ, ये शब्द केवल विशेषण ही नहीं हैं। ठाकुरजी के द्वारा ईश्वर-दर्शन की इन चारों अवस्थाओं की बातें पृथक् भाव से अभिव्यक्त करने पर भी, इन सबके परिप्रेक्ष्य में उन्होंने अपनी अवस्था के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं की है। किन्तु हमलोग शास्त्र के अध्ययन से इन चारों अवस्थाओं के वर्णन को जानकर अवाक् होकर सोचते हैं कि ये रामकृष्ण कौन हैं? श्रीमधुसूदन सरस्वती जी ने अपनी गीता की 'गूढ़ार्थदीपिका' के ३/१८ श्लोक के प्रसंग में कुछ बातें कही हैं, जिसके प्रत्येक अक्षर में श्रीरामकृष्ण देव की अद्वैतावस्था में विद्यमानता का श्रेष्ठ शास्त्र प्रमाण है । ठाकुरजी ने 'श्रीरामकृष्णवचानमृत' में दो स्थानों पर वेदों में वर्णित सप्तभूमि की बात कही है।[३३] उनमें से केवल एक स्थान पर उन्होंने उसका संक्षिप्त परिचय दिया है। किन्तु सम्भवत: वेद में सप्तभूमि का वर्णन नहीं है। .. (Bloomfield -vedic concodance द्रष्टव्य)। किन्तु 'वचनामृत' में ठाकुरजी के द्वारा दिये गये वर्णन के अनुशीलन से और अनुसन्धान से हमें योगवाशिष्ठ में सप्तभूमि का वर्णन मिलता है। श्रीमधुसूदन सरस्वती ने गीता के उस श्लोक की व्याख्या में 'लघुयोगवाशिष्ठ' में उल्लिखित उस सप्तभूमि के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा की है। वह सप्तभूमि तन्त्र-शास्त्रों की सप्तभूमि के जैसा नहीं है। तन्त्र की सप्तभूमि क्रमश: इस प्रकार है – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्त्रार। योगवासिष्ठ की सप्तभूमि है – शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावनी और तुरीयगा। (लघुयोगवाशिष्ठ, ३/९/१३, १४)

इन सप्तभूमियों में प्रथम तीन भूमियों की तुलना जाग्रत अवस्था के साथ की जा सकती है। मन इन तीनों भूमियों में रहते समय संसार में भेद देखता है। उसके बाद मन चतुर्थ-भूमि, अर्थात् सत्त्वापत्ति में आरोहण करने पर अद्वैत भूमि में प्रतिष्ठित हो जाता है और जगत को स्वप्नवत् देखता है। इस चतुर्थ-भूमि में आरूढ़ साधक को ब्रह्मविद् कहा जाता है। इसके ऊपर पंचम, षष्ठ तथा सप्तभूमि है। इन तीनों भूमियों को शास्त्र में जीवन्मुक्त की विकल्पावस्था कही जाती है। इनमें से पंचम भूमि असंसक्ति की सुषुप्ति अवस्था के साथ तुलना की गयी है। क्योंकि जैसे साधारण व्यक्ति अपने प्रयास से ही सुषुप्ति से जाग्रत अवस्था में वापस चला आता है, वैसे ही साधक असंसक्ति अवस्था की समाधि से भी अपनी चेष्टा से ही वापस चले आते हैं। इस अवस्था को प्राप्त योगी को विद्वानवृन्द 'ब्रह्मविद्वर' कहते हैं। इसके बाद साधक इस पंचभूमि में आरोहण का अभ्यास करते-करते षष्ठभूमि में पहुँचता है, जिसे पदार्थाभावनी अवस्था कही जाती है। इस अवस्था को गहन-सुषुप्ति भी कहते हैं। क्योंकि इस अवस्था में समाधि से सुषुप्ति अवस्था के समान अपने प्रयास से उतरना सम्भव नहीं है, इसके लिये दूसरे की सहायता की आवश्यकता है। इस अवस्था में प्रतिष्ठित साधक को ब्रह्मविद्वरीयान कहा जाता है। श्रीरामकृष्ण देव इसी षष्ठभूमि में रहने के कारण ही तोतापुरीजी से संन्यास दीक्षा लेकर लगातार तीन दिनों तक समाधि में लीन हुए थे। वहाँ से वे गुरु की सहायता से वापस आ सके थे, स्वयं के प्रयास से नहीं। जब वे जगन्माता दक्षिणेश्वरी माँ काली की सर्वव्यापी रूप का दर्शन कर समाधि में लीन हुए थे, तब वे अपने प्रयत्न से ही वापस आ गये थे। उन्हें यह समाधि बिना किसी गुरु की सहायता से हुई थी, अपनी

आन्तरिक व्याकुलता से हुई थी। इसलिये वे सुषुप्ति अवस्था में शायित मनुष्यों के समान अपने ही प्रयास से समाधि से वापस आ गये थे।

इसके बाद श्रीमधुसूदन सरस्वती जी ने इससे भी उच्च सप्तभूमि में आरोहण का सन्दर्भ शास्त्रों से उद्धृत किया है। इस सप्तभूमि का नाम तुरीयगा है। तुरीयावस्था जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था के पार चतुर्थ अवस्था है। शंकराचार्यजी के परमगुरु गौड़पादाचार्य मुनि ने स्वरचित विख्यात माण्डूक्यकारिका में तुरीयावस्था की विस्तृत चर्चा की है। जो भी हो, इस सप्तभूमि में प्रतिष्ठित समाधिप्राप्त योगी स्वयं या दूसरे की सहायता से किसी भी तरह चेतन स्तर पर वापस नहीं आ सकते हैं। मानो सच्चिदानन्दघन आनन्द में दिनरात मग्न होकर 'ऊर्ध्वपूर्णम् अध:पूर्णम्' अवस्था में तल्लीन रहते हैं। उनकी शारीरिक क्रिया भी केवल ईश्वर की इच्छा से संचालित होती है। क्योंकि इस अवस्था में उनकी प्राण आदि क्रियाएँ परमेश्वर के द्वारा नियन्त्रित होती रहती हैं।

श्रीरामकृष्ण देव ने तोतापुरीजी से दीक्षा लेकर समाधि की अवस्था प्राप्त की थी। किन्तु उस अवस्था से वापस आकर मानो वे किसी दैवी आवेश में लगातार छह महीने तक निर्विकल्प समाधि में रहे थे। शास्त्रानुसार इस अवस्था में इक्कीस दिन के बाद साँप की केंचुली के समान शरीर-त्याग हो जाना चाहिये था। किन्तु कौन जानता है, किस दैवी शक्ति की प्रेरणा से तब दक्षिणेश्वर में एक अपरिचित साधु का आगमन हुआ, जो श्रीरामकृष्ण की उस अवस्था को देखकर ही समझ गये थे कि यह समाधि भंग होने वाली नहीं है और इस शरीर के द्वारा जगत का बहुत कल्याण होगा। इसलिये वे डण्डा मार-मारकर उन्हें सामान्य चेतन स्तर पर लाकर उन्हें कुछ खिलाते थे। इस प्रकार उन्होंने स्वयं प्रयास कर ठाकुरजी के शरीर की रक्षा की। शास्त्रानुसार इस अवस्था को प्राप्त योगी को ही ब्रह्मविद्वरिष्ठ कहते हैं।

ठाकुरजी कमर में किसी भी प्रकार कुछ बाँधकर नहीं रख पाते थे। यह घटना भी मनमौजी नहीं है और नहीं दूसरों की नकल है। श्रीमद्भागवत में इस अवस्था का स्पष्ट वर्णन किया गया है – "जैसे शराब के नशे में बेहोश शराबी को अपनी कमर में कपड़ा है कि नहीं इसका बोध नहीं रहता, वैसे ही सिद्ध पुरुषों को अपने शरीर का बोध नहीं रहता।[३५] (भागवत - ११-१३-३६)

शास्त्रों के उपदेशानुसार भगवान श्रीरामकृष्ण के जीवन की घटनाएँ ठीक-ठीक मिल जाती हैं, क्या उसके बाद भी इसमें कोई संशय रह जाता है कि वे ब्रह्मविद्वरिष्ठ, अवतारवरिष्ठ, सर्वयुगवरिष्ठ, सर्वजनवरेण्य एवं इससे अधिक अन्य बहुत कुछ हैं कि नहीं? कालचक्र के अग्रसर होने के साथ-साथ भविष्य में श्रीरामकृष्ण देव के शास्त्रीय जीवन तथा ज्ञान के सम्बन्ध में और भी कितने अनाविष्कृत तथ्य जन-मानस के सामने अभिव्यक्त होते रहेंगे एवं मानव को उनकी महिमा से उज्ज्वल करेंगे। लोग जितना ही शास्त्र का अध्ययन करेंगे, उतना ही ये सब तथ्य प्रकट होंगे।

भावविभोर व्यक्ति मौन होकर उनके इस आकाशव्यापी विस्तृत महिमा का चिन्तन करते-करते अपने को भूल जाता है और भक्ति के अतिरेक में गा उठता है — "हे भगवन्! हे सर्वभूतात्मा श्रीरामकृष्ण देव ! हे भावातीत और दुखनाशक! क्या कोई भी व्यक्ति आपकी महिमा के गायन में समर्थ हो सकता है? इसलिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ।"[३६] OOO

सन्दर्भ सूची –

१२. कथामृत, पृ. ८१०-८११ **१३.** दृष्टं हि लोके वणिक्छवरयो: पद्मरागादिमणिविक्रये वणिजो विज्ञानाधिक्यात् फलाधिक्यम्। **१४.** कथामृत, पृ. ८५ **१५.** पलीयमानं अपि च इदं जगत् शक्त्यवशेषम् एव पलीयते, शक्तिमूलम् एव च प्रभवति। **१६.** कथामृत, पृ. ३०१ **१७.** न हि अवस्थाने गां पश्यन् 'अश्व: अयम' इति अमूढ: अध्यवस्यति। **१८.** कथामृत, पृ ९५५

१९ यदि गोत्वादिवत् प्रत्येकं परिसमाप्त: अवयवी स्यात्, यथा गोत्वं प्रतिव्यक्ति प्रत्यक्षं गृह्येत्, एवं अवयवी अपि प्रत्यवं प्रत्यक्षं गृह्येत्। न च एवं नियतं गृह्यते। प्रत्यक् परिसमाप्तौ च अवयविन: कार्येण अधिकारात् तस्य च एकत्वात् शृङ्गेनापि स्तनकार्यं कुर्यात्। न च एवं दृश्यते। **२०.** तेजस्वभावकं हि चन्द्रतारिकादि तेज:स्वभावके एव सूर्ये भासमाने अहनि न भासते इति प्रसिद्धम्। **२१.** लोके द्वारापाला: राज: उपासनेन वशीकृता: राज्यप्राप्त्यर्था भवन्ति। **२२.** कथामृत पृ १६५ **२३.** वही, पृ. ७९४

२४. ईषूकारो जाग्रदपि ईष्वासक्तमनस्तया न अन्यान् विषयान् ईक्षते, ईषुकारो हि व्यापृतमना व्रवीति, 'ईषुम् एव अहम् एतावन्तं कालम् उलभमानम् अभूवम्।' **२५.** यस्मिन् हि यदाश्रितं भवति, तस्माद् आश्रिताद् आश्रयस्य वलवत्तरं प्रसिद्धम्। **२६.** उत्कृष्टदृष्टिर्हि निकृष्टे अध्यसितव्या इति लौकिको न्याय: यथा राजदृष्टि: क्षत्तरि। **२७.** कथामृत पृ. १९ **२८.** वही पृ. ४७१. **२९.** वही पृ. २६६, १०६६ **३०.** ज्ञानं शाश्वत: आचार्य: च आत्मादीनाम् अवबोध:, विज्ञानं विशेषत: अनुभव:। ३१. ज्ञानं शास्त्रोक्तपदार्थानाम् परिज्ञानम् विज्ञानम् तु शास्त्रतो ज्ञातानामं तथा एव स्वानुभवकरणम्। **३२.** कथामृत पृ. ४७९. **३३.** वही. १०२, ७०२ **३४.** विस्तृत विवरण हेतु गीता के ३/१८ श्लोक की व्याख्या में मधुसूदन सरस्वती की गूढ़ार्थदीपिका देंखे। **३५.** देहञ्च नश्वरमवस्थितमुण्डितं वा, सिद्धो न पश्यति यतोऽध्यगमत् स्वरूपम्। दैवादुपेतमख दैववशात् अपेतं, वासो यथा परिष्कृतं मदिरामदान्ध:। **३६.** त्वां स्तोतुं कोऽत्र शक्त: स्यात् भावातीतम् अनामयम्। भगवन् सर्वभूतात्मन् ! रामकृष्ण नमोऽस्तुते॥

स्वामी ब्रह्मानन्द के संस्मरण

स्वामी ओंकारानन्द

(‘राखाल महाराज’, ‘राजा महाराज’ या केवल ‘महाराज’ के नाम से भी परिचित भगवान श्रीरामकृष्ण के एक प्रधान शिष्य तथा रामकृष्ण मठ-मिशन के प्रथम संघाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्दजी आध्यात्मिक भावों के एक अपूर्व ज्योतिपुंज थे। उनके ये संस्मरण ‘स्वामी ब्रह्मानन्देर स्मृतिकथा’ नामक ग्रन्थ में प्रकाशित हुए थे। वहीं से विवेक-ज्योति के लिए स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने उनका हिन्दी अनुवाद किया है। – सं.)

एक बार हरिद्वार में खोका महाराज (सुबोधानन्दजी) ने स्वामी ब्रह्मानन्दजी से पूछा, ‘‘अच्छा महाराज, आप इतनी कठोर तपस्या क्यों करते हैं? ठाकुर तो आपको सब कुछ दे गये हैं।’’ महाराज ने उत्तर दिया, ‘‘अरे खोका, ये सब चीजें देने की नहीं हैं। इसीलिये कर ले रहा हूँ।’’

महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) किसी को छोड़ते नहीं थे। बेलूड़ मठ में रात के तीन बजे सबको उठाकर मन्दिर के बरामदे में ध्यान करने को कहते। स्वयं टहलते रहते। एक दिन एक जन बरामदे में न बैठकर मन्दिर के भीतर जाकर बैठ गये। उन्हें उस टोली में न देखकर महाराज ने उन्हें बुला भेजा। जब सुना कि मन्दिर में बैठे थे, तो फटकार लगायी, ‘‘वहाँ चित्र है न, देख तो रहे नहीं हैं, इसलिये वहाँ अच्छी तरह बैठा जा सकता है और बरामदे में जीवन्त आदमी घूम रहा है न?’’ इसी प्रकार वे लोग साधना करा लेते थे।

* * *

राखाल महाराज स्वामीजी को विशेष रूप से समझ पाते थे। स्वामीजी भी उन पर उसी प्रकार का विश्वास रखते थे। इसका एक कारण भी था। दोनों बचपन के मित्र थे। सुनो, एक घटना बताता हूँ। स्वामीजी तब भी अमेरिका नहीं गये थे। उनके पिता की मृत्यु के बाद सम्पत्ति को लेकर मुकदमा चल रहा था। तभी सूचना मिली कि उनके सम्बन्धी लोग जबरन मकान पर कब्जा करने वाले हैं। राखाल महाराज जमींदार के लड़के थे न, सुनते ही दो गाड़ी गुण्डों को लेकर स्वामीजी के घर जा पहुँचे। कचहरी के फैसले में स्वामीजी की जीत होने पर लौट आये। मित्र की विपत्ति के समय जान की बाजी लगाने को तैयार थे। सोचकर देखो, दोनों के बीच कैसा प्रेम था!

एक घटना और सुनो। एक बार स्वामीजी ने किसी विषय पर राखाल महाराज को खूब खरी-खोटी सुनाई। राखाल महाराज अपने कमरे में जाकर खूब रोने लगे। कहने लगे – नरेन ने केवल मुझे ही नहीं, मेरे बाप-दादों तक को नहीं छोड़ा। थोड़ी देर बाद स्वामीजी भी वहाँ जा पहुँचे। स्वामीजी को देखते ही राखाल महाराज ने जल्दी से उठकर अपनी आँखें पोछीं और पूछा – क्या बात है? स्वामीजी बोले – भाई, तू इस पर ध्यान मत देना। राखाल महाराज ने कहा – ध्यान क्यों दूँगा? मेरा कुछ हुआ थोड़े ही है! स्वामीजी बोले, ‘‘देखो भाई, रोग से कष्ट भोगते-भोगते मेरा ऐसा ही हो गया है – शरीर बिल्कुल ही लाचार हो गया है। इसीलिये थोड़ा मुँह बिगाड़ लेता हूँ।’’ ऐसा ही था उनका आपसी प्रेम!

स्वामीजी एक बार बलराम-मन्दिर में ठहरे हुए थे। जब वे सो रहे थे, तभी उनके घर की नौकरानी उनसे मिलने आयी। राजा महाराज बोले, ‘‘स्वामीजी सो रहे हैं, अभी भेंट नहीं हो सकती।’’ सुनकर नौकरानी चली गयी। थोड़ी देर बाद स्वामीजी की नींद खुली। राजा महाराज ने स्वामीजी को नौकरानी के आने की सूचना दी। सुनते ही स्वामीजी नाराज हो गये। राजा महाराज को खूब डाँटने लगे। इसके बाद एक गाड़ी बुलवाकर सीधे अपनी माँ के पास जा पहुँचे। उन्होंने सोचा था कि शायद माँ की तबीयत खराब होगी या कोई विशेष जरूरत होगी, इसीलिये नौकरानी को भेजा होगा। उन्होंने माँ से पूछा – नौकरानी को क्यों भेजा था? माँ ने कहा – कहाँ, मैंने तो उसे नहीं भेजा था। तब नौकरानी को बुलाकर पूछा गया। वह बोली कि वह उधर काली-मन्दिर में दर्शन करने गयी थी, लौटते समय सोचा कि स्वामीजी को भी देखती चलूँ। यह सुनते ही स्वामीजी जोरों से रोते हुए कहने लगे – मैंने व्यर्थ ही राखाल को इतना डाँटा। कुछ दिनों बाद राखाल महाराज की स्वामीजी की माँ से भेंट हुई। उन्होंने उन्हें बताया कि स्वामीजी किस प्रकार रोये थे। यह सुनकर राजा महाराज बिल्कुल स्तम्भित रह गये।

राजा महाराज का सच्चा व्यक्तित्व था। यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आती थी कि वे ठाकुर तथा उनके अन्य सभी शिष्यों से भिन्न थे। सामान्यत: वे ज्यादा कुछ नहीं बोलते, परन्तु जब बोलते तो अच्छी तरह ही बोलते। उनकी बातों में पर्याप्त हास-परिहास भी होता। उनकी

शिक्षा देने की पद्धति बिल्कुल भिन्न प्रकार की थी। उनकी उपस्थिति मात्र से ही अपने आप एक अलग तरह का परिवेश बन जाता – इसका स्पष्ट रूप से अनुभव होता था। वे भाव की – भक्ति की – भक्ति के विभिन्न पहलुओं की बातें कहते। यही उनकी पद्धति थी। ठाकुर उन्हें वृन्दावन से लाये थे न – वे व्रज के राखाल (गोपाल) थे। उन्हें बच्चों से बड़ा प्रेम था, परन्तु वह बाहर अधिक व्यक्त नहीं होता था। स्वामी प्रेमानन्दजी के समान उनका प्रेम बाहर से नहीं दिखाई पड़ता था। परन्तु बीच-बीच में तो निकल ही आता था। एक दिन राजा महाराज बोले, ''देख, जब कोई तुम लोगों की निन्दा करता है, तो मेरा मन संकुचित हो जाता है और जब कोई तुम लोगों की प्रशंसा करता है, तो मेरा सीना फूल उठता है।'' उन्हें कितने ही कार्य करने पड़े थे। बेलूड़ मठ को उन्हीं ने तो गढ़ा था, सुदृढ़ बनाया था। ठाकुर-स्वामीजी के परिचित तथा शिष्यगण पहले उन्हें नहीं मानते थे। बाद में उनका वास्तविक रूप खुलकर बाहर आ गया। उन्होंने सब कुछ सुचारु रूप से चलाया। सचमुच, वे आध्यात्मिकता से परिपूर्ण थे। सर्वदा भावविभोर रहा करते थे।

जीवन देखना चाहिये। शब्दों से भला कितना काम होता है! जीवन देखने पर सहज भाव से ही प्रभाव पड़ता है। हमारा बड़ा सौभाग्य है कि हमें ठाकुर के शिष्यों को देखने का मौका मिला था। हम लोगों में कितनी angularities (वक्रताएँ) हैं – हम लोग सभी से प्रेम नहीं कर सकते। परन्तु हमने राजा महाराज आदि को देखा है – सभी के प्रति उनका कितना प्रेम था। स्वामीजी को नहीं देखा – परन्तु अन्य बड़ों को देखा है। राजा महाराज को देखकर समझ में आ जाता था कि आध्यात्मिकता क्या है। भाई, यही सब तो जीवन की सम्पदा है!

* * *

बाली के लोगों ने प्रारम्भ में मठ के साथ बड़ी शत्रुता दिखायी थी। उन लोगों ने अर्जी दी थी कि यह मठ नहीं, निवास-भवन है; अत: टैक्स में छूट नहीं मिल सकती। इस बात को लेकर अदालत में मुकदमा चला था। बाली के सभी लोग मठ के विरुद्ध थे। मुकदमे की सुनवाई के दिन राखाल महाराज, स्वामी विज्ञानानन्द तथा वैकुण्ठ सान्याल गवाह थे। यह घटना विज्ञान महाराज ने स्वयं ही मुझे बतायी थी। वैकुण्ठ सान्याल साक्षी देने के लिये खड़े होकर सभी आरोपों पर हामी भरने लगे। राखाल महाराज और विज्ञानानन्दजी तो अवाक रह गये। परन्तु इससे क्या होने वाला था? तभी गवाही देते-देते वैकुण्ठ सान्याल सहसा बेहोश होकर धम से गिर पड़े। इस कारण रुग्ण व्यक्ति की बातें मानकर सान्याल महाशय की बातों को स्वीकार नहीं किया गया – राखाल महाराज की बातें रेकार्ड की गयीं और जिला मजिस्ट्रेट को निरीक्षण करने का आदेश दिया गया। डी. एम. साहब एक दिन सुबह मुख में पाइप लगाये और हाथ में छड़ी घुमाते हुए मठ के मुख्य द्वार पर उपस्थित हुए। उन दिनों चारों ओर बेड़ा लगा हुआ था। स्वामीजी तब भी जीवित थे। डी. एम. मठ में प्रवेश करने का रास्ता खोज रहे थे। इधर मठ का कुत्ता बाघा, उन्हें देखते ही रास्ता दिखाते हुए, इन दिनों जहाँ चाय पीते हैं, वहीं ले आया। स्वामीजी ने नीचे आकर उनके साथ बातें कीं। उन्होंने रिपोर्ट में लिखा – The dog has showed me the way. So it must be a monastery. (कुत्ते ने मुझे रास्ता दिखाया, इससे सिद्ध होता है कि यह एक मठ है)। टैक्स माफ हो गया।

* * *

स्वामीजी का सर्वाधिक विश्वास राजा महाराज पर ही था। अमेरिका जाने के पूर्व उनकी इन्हीं राखाल महाराज तथा हरि महाराज के साथ सहसा भेंट और बातचीत हुई। इसके बाद विदेश से भी स्वामीजी राजा महाराज तथा शशी महाराज को ही निरन्तर पत्र द्वारा निर्देश देते कि किस प्रकार कलकत्ते का मठ चलाना होगा और किस प्रकार संघ को संगठित करना होगा। विदेश से लौटकर उन्होंने बेलूड़ मठ की स्थापना की। उन्होंने राजा महाराज को अध्यक्ष तथा शरत् महाराज को सचिव बनाया। राजा – ठाकुर का चुनिंदा व्यक्ति और आध्यात्मिकता में सर्वश्रेष्ठ है। स्वामीजी उन पर इतना विश्वास करते कि एक बार कहा था, ''सभी लोग मेरा त्याग कर सकते हैं, परन्तु राजा मुझे नहीं छोड़ेगा।'' स्वामीजी जानते थे कि राजा महाराज मठ को ठीक ढंग से चला सकेंगे और उसे उनकी (स्वामीजी) परिकल्पना के अनुसार गढ़ सकेंगे। और शरत् महाराज का ठण्डा खून किसी भी परिस्थिति में गरम नहीं होता था। इसीलिये उन्होंने शरत् महाराज को अमेरिका के प्रचार-कार्य से हटाकर यहाँ लाकर मठ का सचिव बना दिया। इसके बाद ही उनके सिर का बोझ उतर सका था।

* * *

स्वामीजी के देहत्याग के बाद राजा महाराज को कितना

परिश्रम करना पड़ा था! माँ ने भी कितने ही तरह के उपदेश और निर्देश देकर संघ की सहायता की है। इसीलिये १९२० ई. में जब माँ का देहत्याग हुआ, तब महाराज ने आकुल कण्ठ से कहा था, "गिरिजा, आज मैं अनाथ हो गया, आज मैं अनाथ हो गया रे।" अपनी माँ का देहान्त होने पर बच्चे की जैसी हालत होती है, राजा महाराज की भी वैसी ही अवस्था हुई थी। माँ ने नाव में जाते समय देखा था – ठाकुर केले के उद्यान में खड़े हैं। आज जहाँ मठ है, वहाँ उन दिनों केले का बगीचा था। इसीलिये तो स्वामीजी ठाकुर को वहाँ बैठा गये हैं। इस मठ के पीछे इतने आशीर्वाद और इतना त्याग विद्यमान है। यह मठ क्या इतनी आसानी से नष्ट होगा? कुछ लोगों का अनाचार या अत्याचार हम लोगों का कुछ भी नहीं बिगाड़ सकेगा।

* * *

रामनाम-संकीर्तन के समय स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने काशी के अद्वैत आश्रम में प्रत्यक्ष देखा था – एक वृद्ध खड़े होकर रामनाम सुन रहे हैं। उन्होंने पहचान लिया कि ये महावीरजी हैं। इसके बाद से ही रामनाम के समय एक आसन लगाने की परम्परा शुरू हुई और उस आसन पर रामनाम की एक पुस्तिका भी रखी जाती है।

* * *

एक बार राजा महाराज और महापुरुष महाराज बैठे हुए थे। मैं भी वहीं था। राजा महाराज बोले, "समझ में नहीं आता कि उनकी क्या इच्छा है। कितने ही लोग लगता है कि धर्मपथ पर खूब आगे बढ़ रहे हैं, परन्तु आश्चर्य की बात कि वे लोग भी पतित हो जाते हैं। और जिनके विषय में सोचता हूँ कि कुछ नहीं होगा, वे खूब आगे बढ़ जाते हैं। उनकी लीला भला कौन समझेगा?"

राजा महाराज उन दिनों बड़े अस्वस्थ थे। बलराम बाबू के मकान में पूर्व की ओर के कमरे में रहते थे। एक सज्जन उनसे मिलने आये। मैं भी वहीं था। उन सज्जन ने पूछा, "महाराज कैसे हैं?" महाराज ने उत्तर दिया, "उन (ठाकुरजी) के साथ एक दिन बिताने पर जो आनन्द होता है, उससे मृत्यु की पीड़ा भी तुच्छ हो जाती है।" बाद में वे फिर बोले, "अब विधि का विधान पूरा हुआ।" मुझे भुवनेश्वर जाने को कहा। मैं बोला, "महाराज, आपके साथ जाऊँगा।" उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। हम लोग समझ गये कि उन्होंने महाप्रयाण का संकल्प कर लिया है, अब उसे टाला नहीं जा सकता। ○○○

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२९०. मणिमुक्ता माँगू नहीं, माँगूं सुगंधित फूल

मिश्र देश में नकिबेन नामक एक परोपकारी एवं न्यायी राजा था। वह भगवान का भक्त भी था। सादगी, सच्चाई सहिष्णुता, संयम आदि गुण उसमें कूट-कूट कर भरे थे। इससे राज्य की प्रजा अत्यन्त सुखी थी। एक दिन नीलदेवता ने उस पर प्रसन्न हो उसे सोने की एक तलवार देते हुए कहा, "तुम्हारी प्रजावत्सलता से प्रसन्न होकर मैं तुम्हें यह तलवार दे रहा हूँ। मेरी कामना है कि विश्वविजयी बनकर तुम दिग्दिगन्त में अपनी कीर्तिपताका फैलाने में सफलता प्राप्त करो।' राजा ने कहा, "भगवन्, आपकी यह तलवार मेरे किस काम की? आप इसे अपने पास ही रखें।" नीलदेव ने तलवार वापस लेते हुए कहा, "तब इस पारसमणि को रखो। तुम्हारे राज्य में अकाल, भूकम्प, महामारी जैसी प्राकृतिक आपदा आने पर तुम्हारी प्रजा पर भूखों मरने की स्थिति नहीं आएगी।' नहीं, यह मेरे काम की नहीं। राजा ने कहा, "मेरा खजाना सोने की मुहरों से भरा है, मेरी प्रजा स्वावलम्बी है, खेतों में पर्याप्त फसल होने से राज्य धन-धान्य से परिपूर्ण है। इसलिये मुझे किसी भी प्रकार के लोभ-मोह में न डालें।

"फिर तू ही बता, तुझे क्या चाहिये? मैं तुझे कुछ दिये बिना वापस नहीं जाऊँगा।" देवता ने कहा। राजा ने कहा, "आप आग्रह ही कर रहे हैं, तो मुझे एक सुगंधित फूल दीजिए, जो सबको तरोताजा और प्रसन्न रहने की प्रेरणा देगा। मैं इससे शिक्षा ग्रहण कर जनहित रूपी सुगन्ध से प्रजाजनों के जीवन को महकाने का प्रयास करूँगा।"

स्नेह, स्निग्धता, सौन्दर्य और सुकुमारता इन गुणों से युक्त फूल उज्ज्वल चरित्र के प्रतीक होते हैं। जिस प्रकार वे सुगन्ध बिखेरकर सबको प्रमुदित करते हैं, उसी प्रकार हमें भी अपने शील और गुणों से सबको प्रसन्नचित्त रखने का प्रयत्न करना चाहिये। ○○○

जैसे फूल को हिलाने-डुलाने से उसकी सुगन्ध आती है, चन्दन को घिसने से उसकी सुगन्ध आती है – वैसे ही भगवत्-चर्चा करते-करते तत्त्वज्ञान का उदय होता है।

– श्रीमाँ सारदादेवी

साधना की अद्भुत प्रणाली – केनोपनिषद (१६)

स्वामी आत्मानन्द

(स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनके द्वारा कलकत्ता में प्रदत्त इस प्रेरक व्याख्यान को स्वामी प्रपत्त्यानन्द द्वारा सम्पादित कर विवेक ज्योति के पाठकों हेतु प्रकाशित किया जा रहा है।)

शिष्य ने गुरुजी से पूछा कि बाधक तत्त्व क्या है? गुरुजी कथा बताते हैं और बाधक तत्त्व को सामने रख देते हैं, वह अहं का अनुभव है। जब तक यह जीवात्मा देहाभिमानी है, अपने को देह और मन विशिष्ट मानता है, तब तक उसे उस ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो पाता है। आत्मचैतन्य की प्रतीति उसके जीवन में नहीं हो पाती है। पर जब अहंकार से विरहित हो जाता है, जब अपने आप को समर्पित कर देता है, तब उसे ब्रह्मतत्त्व का अनुभव होता है। किस प्रकार? जैसे इन्द्र ने समर्पित कर दिया। जिस समय वह यक्ष अन्तर्धान हो गया, उस समय इन्द्र के जीवन में ग्लानि का उदय होता है। वे आत्म-विश्लेषण करने लगते हैं। – मुझमें क्या कमी है? अग्नि और वायु से उस यक्ष ने बात की, मुझसे बात तक नहीं की। इसका तात्पर्य है कि मुझमें ही कुछ कमी है, ऐसा विचार करके इन्द्र अपने दोषों को पकड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। जब उन्हें अपनी गलती पकड़ में आती है, तब लगता है कि शायद मैं उनके साथ बातचीत करने की पात्रता नहीं रखता हूँ। तब वे तुरन्त भगवान की शक्ति को, उमा हैमवती को, ब्रह्मविद्या को सामने देखते हैं। उनके चरणों में गिरकर के प्रणाम करते हैं। उनसे पूछते हैं – माँ ! मैंने जिस यक्ष को देखा, वह यक्ष कौन है? तब माँ उमा कहती हैं – अरे ! वही तुम्हारा स्वरूप है, जिस स्वरूप को जानने की तुम लोग चेष्टा करते हो, जिसे ध्यान और समाधि के माध्यम से अनुभूति करने का प्रयास करते हो। अहंकार के पर्दे के कारण तुम्हारे सामने उस तत्त्व के आने पर भी तुम उसे नहीं समझ सके।

अब यहाँ पर साधना के कुछ व्यावहारिक निर्देश देते हैं। साधना करते समय क्या-क्या अनुभूति किसी को हो सकती है, इसका सूक्ष्म निर्देश यहाँ प्रदान किया है। अगले मन्त्र में कहते हैं –

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा३ इतीन्न्यमीमिषदा ३ इत्यधिदैवतम्।।४/४/४।।

– यह उस ब्रह्म का उपासना सम्बन्धी आदेश है। जो विद्युत-प्रकाश के समान और पलक झपकने के सदृश प्रकट हुआ, वह उस ब्रह्म का आधिदैवत रूप है।

तस्य एष आदेश: – जब तुम ब्रह्म को पाने की चेष्टा करोगे, उस चेष्टा में यह साधना सम्बन्धी आदेश है, निर्देश है। क्या आदेश है? व्यद्युतदा... यहाँ पर आ शब्द है, इसमें हमें नहीं जाना है क्योंकि यह टेक्नीकल है, इसमें जाने से समय अधिक होगा और हम फिर न्याय नहीं कर पायेंगे। यहाँ तीन बार आ आ आ लिखा मिलेगा, जिसका हमलोग पाठ करते हैं। यह ब्रह्म बिजली की चमक के समान चमक कर, प्रकाशित होकर चला गया। और कैसा? निमीमिषद् आ, जैसे आँख की पलक झपकती है, उसमें जितना समय लगता है, ठीक उसी प्रकार उस पलक झपकने के समान मानो एक मुहूर्त से भी कम में ही ब्रह्म इन्द्र के सामने यक्ष का रूप लेकर बिजली की चमक के समान आया और अदृश्य हो गया। जैसे पलक झपकते ही कुछ दिखाई नहीं देता है, हम कहते हैं – अरे ! वह तो पलक झपकते ही चला गया। वैसे ही बिजली के चमकने के समान वह ब्रह्म यक्ष का रूप लेकर सामने खड़ा हो गया ।

यह अधिदैवत आदेश है। अधिदैवत का क्या अर्थ है? इसका एक तो आध्यात्मिक रूप है, जो मन के साथ सम्बन्धित है, दूसरा अधिदैवत रूप देवताओं से सम्बन्धित है, सूक्ष्म जगत से सम्बन्धित है और तीसरा भौतिक जगत से सम्बन्धित है, आधिभौतिक कहते हैं। ये तीन शब्द आप संस्कृत साहित्य में पढ़ते हैं – आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। आधिभौतिक का अर्थ भौतिक जगत से है। आधिदैविक सूक्ष्म जगत से सम्बन्ध रखता है। जो देवता दिखते नहीं है, उनसे है। देवताओं से कैसे सम्बन्धित है? देवताओं की कृपा नहीं है, कैसे समझेंगे? जैसे खूब जोरों से आँधी आती है, हमारी सम्पत्ति नष्ट हो जाय, अग्नि के कारण दावानल धूधू करके जलने लगे, हमारे मकान और सम्पत्ति को जला दे, जल से सब कुछ डूब जाय, तो वह यह आधिदैवत संकट कहा जाता है। यह देवताओं के द्वारा भेजा गया संकट कहा जाता है। यह देवताओं सम्बन्धी आदेश है, देवताओं से जो साधना का निर्देश मिला, उसका क्या अर्थ है? तात्पर्य यह है कि हम अपने जीवन में इसका चिन्तन करें, साधना करें कि वह आत्मतत्त्व कैसा है? वह बिजली

की चमक के समान आविर्भूत होता है और पलक झपकते अदृश्य हो जाता है, इस प्रकार का चिन्तन हमें उस तत्त्व के पास पहुँचाने में सहायक होता है। उससे हमारा मन धीरे-धीरे स्थिर होता है।

यहाँ पर यह कहा गया है – मन तो है चंचल, चंचल मन को कहीं स्थिर नहीं कर सकते हैं। बहुत कठिन है। हम ध्यान के सहारे इस चंचल मन को कहीं एक बिन्दु में, इष्ट में केन्द्रित करने की चेष्टा करते हैं। ये चेष्टा हमारी सफल इसलिए नहीं होती है कि जब हम इसे कहीं एकाग्र करने का प्रयास करते हैं, तब मन भाग जाता है, फिर से हम उसे पकड़ते हैं, फिर मन भाग जाता है। हम बार-बार उसे पकड़ कर लाते हैं। इसका आप अनुभव करते हैं। प्रत्येक के मन के साथ यही दुर्दशा है।

तब हम क्या करें? हम तो मनोविज्ञान नहीं जानते हैं, इसीलिए यह कठिनाई होती है। इतने चंचल, इतने गतिशील मन को हम अचानक एक स्थान में कैसे बिठा सकते हैं? उसको परिधि में रखना पड़ता है। जैसे हमने एक घेरा बाँध दिया और हमने मन को स्वाधीनता दे दी – मन ! तू तो घूमना चाहता है, इस घेरे के भीतर में घूम। जैसे भक्ति की साधना में हम घेरा दे देते हैं। क्या घेरा देते हैं? मान लीजिए, भगवान श्रीकृष्ण हमारे इष्ट हैं। अब हम ब्रजधाम में जाते हैं। मथुरा में जाते हैं। कारागार देखते हैं, जहाँ पर भगवान का आविर्भाव हुआ था। उसके पश्चात हम गोकुल में चले गये। गोकुल में भगवान ने कहाँ-कहाँ, क्या लीलाएँ की थीं, उसे देखकर आते हैं। उसके बाद वृन्दावन में कहाँ पर प्रभु ने कैसी लीला की थी, उसे देख करके आते हैं। यह सब देखने के बाद आ गये।

भगवान श्रीकृष्ण हमारे इष्ट हैं। ध्यान में मन लगता नहीं है, भागता है, वह इष्ट में बैठना नहीं चाहता है। तब हम क्या करते हैं? उसको एक परिधि में घूमने को कहते हैं। हम मन से कहते हैं – मन ! प्रभु के जितने लीला-स्थान हैं, उनमें विचरण कर। नाम, रूप, लीला, धाम, आप ये चार शब्द पढ़ते हैं। नाम और जो नामी हैं, उनका रूप तथा उन्होंने जो लीलाएँ की हैं वे लीला, धाम माने जिन स्थानों में लीलाएँ कीं। मानों इन चारों का चिन्तन हो रहा है। हम भगवान कृष्ण का, अपने इष्ट का नाम ले रहे हैं, उनके रूप का ध्यान कर रहे हैं, मन भागना चाहता है तो उन स्थानों में जाने के लिए कहते हैं, जहाँ पर प्रभु की लीलाएँ हुई थीं, उन लीलाओं का चिन्तन कर रहे हैं, तो मन को खाद्य मिल गया। मन एक ही जगह पर नहीं बैठ रहा है, मन जो भागना चाहता है, हम उसको खाद्य प्रदान कर रहे हैं। मन तू भागना ही तो चाहता है, तू गतिशील है, तू चुपचाप बैठना नहीं चाहता, मत बैठ, इस घेरे के भीतर में घूम। नाम, रूप, लीला वह घेरा है, जिस घेरे में हम मन को लगा देते हैं। मन कहाँ भागेगा? या तो कालिन्दी तट पर भागेगा, या कुंजवन में भागेगा, या कालिया-दमन में भागेगा। प्रभु ने जहाँ पर लीलाएँ की थी, वहाँ पर हम उसे ले जाकर कहते हैं, अब तू घूमते रह। पर केन्द्र कौन हैं? हमारे इष्ट हैं। इस प्रकार मन लीला का दर्शन कर रहा है।

जब ध्यान की गहराई बढ़ती है, तब धीरे-धीरे वह घेरा सिमटता जाता है, एक दिन ऐसी स्थिति होती है, जब हमारे हृदय में प्रभु ही विराजते हैं और सब कुछ गायब हो जाता है। यह साधना में सिद्धि की अवस्था है। मन को पकड़ने की विधा है, इस प्रकार से मन को पकड़ा जाता है। जैसे, बहुत से लोग श्रीरामकृष्ण को अपना इष्ट मानते हैं। उनके लिए उचित है कि जहाँ-जहाँ श्रीरामकृष्ण देव ने लीलाएँ कीं उनका दर्शन करें। एक बार उनके जन्मस्थान कामारपुकुर के दर्शन किये। कभी दक्षिणेश्वर में पंचवटी का दर्शन किया। प्रभु ने अपने हाथों से यह पंचवटी लगायी थी। बेलतला है, जहाँ पर उन्होंने शक्ति की, तंत्र की साधना की थी । यह उनका कमरा है, जहाँ पर वे विराजते थे, भक्तों को उपदेश प्रदान करते थे। जब हम श्रीरामकृष्ण-वचनामृत पढ़ते हैं, तो लगता है, मानो हम भी वहाँ पर भक्तों के साथ बैठे हैं। राधाकान्तजी का मंदिर है, जहाँ पर पहली बार ठाकुर को समाधि लगी और उनका पहला चित्र खींचा गया । यह भवतारिणी काली माई का मंदिर, जहाँ पर उन्होंने पूजा की, वहाँ वे कितना रुदन करते थे। ये द्वादश शिव मंदिर हैं, जहाँ वे भगवान शंकर की वन्दना करते थे। यह पंचवटी के नीचे की कुटिया है, जहाँ पर उन्होंने अद्वैत की साधना की। यह काशीपुर का उद्यान भवन है, जहाँ वे १ जनवरी १८८६ ई. को कल्पतरु बने थे। इस प्रकार हमने मन से कह दिया, ठीक है मन ! तू घूमना चाहता है न, तो श्रीरामकृष्ण के नाना रूप और लीलाधामों के इसी घेरे में जितना चाहे घूमता रह। जैसे-जैसे मन घूमेगा, बाहर का संसार विलुप्त होता जायेगा और उसकी परिधि एक दिन अत्यन्त छोटी हो जायेगी और केवल इष्ट ही बचे रहेंगे ।

(क्रमशः)

आध्यात्मिक जिज्ञासा (४)

स्वामी भूतेशानन्द

एक बार की बात है। हमारे एक पुराने संन्यासी (स्वामी पूर्णानन्द) केदारनाथ-बद्रीनाथ तीर्थाटन में गये थे। मार्ग में एक स्थान पर स्नान कर रहे थे। उनके गले में श्रीश्रीमाँ के चित्र का एक लॉकेट था। स्नान करते समय तो वह ढका हुआ नहीं था। एक व्यक्ति ने देख लिया। उन्होंने संन्यासी से पूछा – 'ये महिला कौन हैं?'' हमारे संन्यासी ने कहा – 'ये श्रीरामकृष्ण परमहंस की पत्नी हैं।'' एक दूसरे व्यक्ति तो सुनकर नाराज हो गये। ''उन्होंने कहा – ''क्या आप उन्हें श्रीमाँ नहीं कह सकते?'' विदेश में बहुत से लोग सोचते हैं, ठाकुर नहीं, स्वामीजी ही अवतार हैं। हमारे एक आस्ट्रेलियन ब्रह्मचारी थे। उनका नाम ओल था। उनसे हमने सुना है। वे कहते थे – 'स्वामीजी हमें मार्ग के रजकण से उठाकर लाये हैं।'' वह भी एक विलक्षण घटना है। उस दिन उनका जन्म दिन था। वे बाजार में शराब खरीदने गये थे। वे जन्मदिन मनायेंगे। उन्होंने अपने मित्रों को निमन्त्रण दिया है। उन लोगों को जन्मदिन पर शराब आवश्यक है। शराब खरीदकर ला रहे थे। तभी मार्ग में उन्हें एक दर्शन हुआ – उन्होंने एक चित्र देखा। उन्होंने सोचा – ये कौन हैं? मैंने किसको देखा? इनका नाम तो नहीं जानता हूँ। लगता है, कोई महात्मा हैं। इन सन्त ने हमें दर्शन ही क्यों दिया? अवश्य ही कोई परिवर्तन लाने के लिए ही दर्शन दिया है। ऐसा सोचकर उन्होंने रास्ते में ही शराब की बोतलों को फोड़कर फेंक दिया। खाली हाथ घर पहुँचे। उनकी बहन ने पूछा – 'शराब कहाँ है?'' उन्होंने कहा – 'मैं आज से शराब स्पर्श नहीं करूँगा।'' उसके बाद उन्होंने जिनका दर्शन किया था, उनका अनुसंधान प्रारम्भ किया। चारों ओर खोजा, किन्तु कहीं भी पता नहीं चला। वे वहाँ से दो सौ मील दूर सिडनी चले गये कि कहीं वहाँ कुछ पता चले। सिडनी में घूमते-घूमते एक पुस्तक की दुकान पर पहुँचकर खड़ा होकर आश्चर्यचकित होकर एक पुस्तक के कवर (मलायट) पर स्वामीजी के ध्यानस्थ चित्र को देखने लगे। वह 'राजयोग' की पुस्तक थी। स्वामीजी के चित्र को देखकर उन्हें लगा कि, यही तो वे हैं। इन्होंने ही तो मुझे दर्शन दिया था। उन्होंने वह पुस्तक खरीद कर पढ़ी। उस पुस्तक मैं अद्वैत आश्रम का पता था। वहाँ उन्होंने पत्र लिखा। उस समय स्वामी अशोकानन्द जी 'प्रबुद्ध भारत' के सम्पादक थे। वे उनके सभी प्रश्नों के उत्तर देने लगे। उन्होंने महापुरुष महाराज से सम्पर्क कराकर उनसे सभी आध्यात्मिक प्रश्न करने को कहा था। तभी से वे महापुरुष महाराज से सम्पर्क रखते थे। उसके बाद उनके साधु होने की इच्छा व्यक्त करने पर महापुरुष महाराज ने लिखा – ''बापू, तुम्हारे देश के लोगों का यहाँ स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता है। इसलिए यहाँ मत आना। किन्तु वे भी नहीं छोड़ने वाले थे। तब महापुरुष महाराज ने चिन्तित होकर लिखा – ''ठीक है, आओ, किन्तु वापस जाने के लिये रुपये यहाँ जमा रखना। नहीं तो, हम लोग कहाँ से इतना रुपया पायेंगे? रुपये रहते भी तुमको वापस कैसे भेजेंगे, यदि तुम्हारा स्वास्थ्य ही यहाँ ठीक न रहे।'' ठीक वही हुआ। आने के कुछ वर्ष बाद ही उनका स्वास्थ्य खराब हो गया। तब उन्हें वापस जाने को कहा गया। रुपया तो था ही। वे वापस चले गये। किन्तु वहाँ जाकर जीवनभर स्वामीजी के भक्त बनकर ही रहे। एक बार उन्हें लेकर मास्टर महाशय से भेंट कराने ले गया था। वार्तालाप के दौरान मास्टर महाशय ने कहा – ''ठाकुर अवतार हैं।'' वे तो ठाकुर के भक्त नहीं थे। उन्होंने कहा – ''स्वामीजी अवतार हैं।'' मास्टर महाशय ने पुन: कहा – ''स्वामीजी अवतार नहीं हैं।'' ठाकुर अवतार हैं, वे किसी तरह से भी मानने को तैयार नहीं थे।

दूसरे जगह स्वामीजी ने ठाकुर के सम्बन्ध में कहा है – 'भगवानेर बाबा' – भगवान श्रेष्ठ। भगवान अर्थात् अवतार और बाबा अर्थात् श्रेष्ठ। भगवानेर बाबा का अर्थ भी अवतारवरिष्ठ है। अवतारवरिष्ठ का तात्पर्य है कि उनमें

मानव-भाव और देवभाव दोनों एक साथ रहते हैं। ठाकुर कहते हैं – ''इसमें एक भक्त और दूसरा भगवान दोनो हैं।'' दोनों भाव ही हैं। सहचारी हैं । सामान्यत: हमलोग इसे समझ नहीं पाते हैं। एक के साथ दूसरे को मिला देने से नहीं होगा। एक के साथ दूसरे का साथ-साथ निवास है। इच्छा होने से ही दोनों भावों में से किसी में भी वे रह सकते हैं। दोनों भाव विपरीत हैं। एक पूर्ण और एक अपूर्ण है। किन्तु, दोनों एक ही स्थान पर एक ही व्यक्ति में रह सकते हैं। वे ही अवतार हैं। अवतार में यदि मानव-भाव नहीं होता, तो उनका कोई अवतारत्व नहीं रहता। मानव के बीच उन्हें मानव के सदृश व्यवहार करना पड़ता है। नहीं तो, वे कैसे मानव को आकर्षित कर सकेंगे? इसीलिए मानव-भाव में रहना पड़ता है। केवल मानव-भाव में रहना ही नहीं, मानव-भाव से देव-भाव में इच्छा मात्र से स्वयं जा सकते हैं और दूसरों को भी ले जा सकते हैं।

प्रश्न – महाराज, ठाकुर ने कहा है – 'कलियुग में नारदीय भक्ति' अर्थात् भगवान का नाम-गुणगान, पूजा इत्यादि करने से उनसे प्रेम होगा। स्वामीजी ने कहा है – ''जिस दिन से ठाकुर का आविर्भाव हुआ है, उसी दिन से सतयुग आरम्भ हो गया है। इसलिए वर्तमान युग सतयुग है या कलियुग, इसमें हमलोगों को संशय है। क्या थोड़ा समझायेंगे?

महाराज – देखो। यह कौन-सा युग है, इसका उत्तर है कि तुम्हारा मन किस स्तर पर है? समय या काल मुख्य नहीं है। तुम्हारे मन की अवस्था ही प्रमुख है। सतयुग में भी दुर्जन लोग थे, कलियुग में भी हैं। हाँ, ठाकुर ने कहा है – ''कलियुग में नारदीय भक्ति।'' नारदीय भक्ति का अर्थ है अहैतुकी निष्काम भक्ति। इसमें भक्त भगवान से प्रतिदान कोई वस्तु नहीं चाहता, केवल अपने हृदय का प्रेम समर्पित करके ही अपने को धन्य बोध करता है। भागवत में है –

कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम्।
कलौ बहु भविष्यन्ति नारायण-परायणाः ।।११/५/३८।।

जो सतयुग के लोग हैं, वे कलियुग में जन्म लेने की कामना करते हैं। क्योंकि कलियुग में भक्ति की सहायता से ही हमें मुक्ति मिल जाती है। किन्तु यदि हमलोग ठाकुर के भावानुसार चलें, तो सतयुग और कलियुग इस प्रकार भेद करना ठीक नहीं होगा। ठाकुर ने विभिन्न भक्तों को एक ही समय भिन्न-भिन्न उपदेश दिये हैं। इसलिए ऐसा निश्चित कोई नियम नहीं हो सकता कि कलियुग में भक्तियोग, सतयुग में ज्ञानयोग और त्रेतायुग में कर्मयोग की साधना करेंगे। अर्थात् युग-प्रधान बात नहीं है, मुख्य बात है मन की अवस्था। इसलिए ठाकुर ने कभी भी सबके लिये एक नियम की बात नहीं कही। वे अधिकारी को देख-समझकर उपदेश देते थे।

श्रीमाँ को भी अधिकारी-भेद से भिन्न-भिन्न उपदेश देते हमलोग देखते हैं। वे किसी को कहती हैं – ''बेटा विवाह नहीं किया है, अच्छा किया।'' किसी दूसरे को कहती हैं – हाँ बेटा, विवाह करना। देखो न, सब कुछ दो-दो हैं। इसका कारण अधिकारी-भेद है, युगभेद नहीं। एक ही युग में त्रेतायुग के भी लोग हैं और कलियुग के भी हैं।

जिस भागवत में नाम-महिमा का वर्णन है, उसी भागवत में ही अधिकारी-भेद की बात भी कही गयी है। किसी के लिये ज्ञानयोग, किसी के लिये भक्तियोग और किसी के लिये कर्मयोग अच्छा है। इसलिए हमलोग किसी निश्चित युग में जन्म नहीं लिये हैं। स्वामीजी ने जो कहा है कि – ठाकुर के आविर्भाव के साथ-साथ सतयुग आरम्भ हो गया है, उसका अर्थ दूसरा है। ठाकुर ने अपनी साधना के द्वारा आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने का मार्ग सुगम कर दिया है। इस पथ के अनुयाइयों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ेगी और मानव का मन चैतन्य के उच्च स्तर पर उठता रहेगा। जो भी हो, वर्तमान में पुराणानुसार युग का विभाग करना ठीक नहीं होगा। क्योंकि मानव-मन की अवस्थानुसार युग-विभाजन करना होगा। सतयुग में भी लोगों का मन अधोगामी निम्न स्तर पर था, पुराणों में इसके उदाहरण की कोई कमी नहीं है। स्वामीजी ने कहा है – सतयुग आ गया है। वह सतयुग तो ज्ञानप्रधान है। तब उन्होंने कर्म करने को क्यों कहा? ये बातें विरुद्ध प्रतीत होंगी। किन्तु यहाँ कोई विरोध नहीं है। जैसी मन की अवस्था होगी, उस पर युग निर्भर करता है, (उसके अनुसार युग होगा)। अब प्रश्न है कि मन की अवस्था कैसी है, कौन बतायेगा? उत्तर है – तुम्हारा मन ही कह देगा, यदि तुम निरपेक्ष भाव से विचार कर सको तो। अर्थात् यदि पक्षपात न करो, विचार करो, तो तुम्हारा मन ही कह देगा, तुम किस युग में हो। जैसी मन की अवस्था होगी, वैसा ही अधिकार होगा। जो कर्मशील है, वह कर्मयोग से जायेगा। जो तार्किक, बौद्धिक है, वह ज्ञान के द्वारा जायेगा। इसके लिए कोई साधारण निर्देश सम्भव नहीं है कि एक विशेष समय में सभी लोग एक विशेष योग के द्वारा जायेंगे। **(क्रमशः)**

रामू का बिल

रामू के पिता गाँव में एक डॉक्टर थे। गाँव में उनका एक छोटा सा दवाखाना था। वे रोगियों का उपचार बहुत अच्छी तरह और कम पैसों में करते थे। गरीब लोगों से वे पैसे लेते नहीं थे। रामू भी कभी-कभी भी अपने पिता के साथ दवाखाने में जाता था।

रोगियों के उपचार और उन्हें दवाईयाँ देने के बाद जिनकी घर की स्थिति अच्छी होती थी, उन्हें वे काउन्टर पर बिल के पैसे जमा करने के लिए कह देते। एकबार रामू ने अपने पिता से पूछा, 'पिताजी, यह बिल क्या होता है भला?' पिताजी ने रामू को एक कागज का टुकड़ा दिखाकर कहा कि इसे बिल कहते हैं। रामू ने देखा तो बिल पर कुछ इस प्रकार लिखा था –

रोगी की जाँच - ५० रु.
एक्स-रे - ५० रु.
दवाई - ४० रु
कुल - १४० रु.

रामू ने बिल बहुत बार उलट-पलट कर पढ़ा। उसने एक युक्ति सोची। उसने सोचा कि मैं तो घर पर माँ के छोटे-बड़े बहुत सारे काम करता हूँ। उन सबकी सूची बनाकर माँ को बिल दूँगा। उससे पैसे मिलेंगे और दोस्तों के साथ खूब आनन्द करूँगा।

घर में वह अपने कमरे में गया। माँ ने उसे आज कुछ छोटे-मोटे काम करने के लिए कहे थे। रामू ने उन सबकी सूची बनाकर अपनी माँ के नाम पर बिल बनाया –

बगीचे से फूल लेकर आना - १५ रु.
पड़ोस की चाची को सन्देश देना - १० रु.
किराने की दुकान से नमक खरीदकर लाना - १५ रु.
कुल - ४० रु.

रामू ने वह बिल अपनी माँ के कमरे में जाकर चुपके से रख दिया। माँ ने अगले दिन सुबह रामू के तकिये के पास एक रुमाल में कुछ पैसे और एक कागज बाँधकर रख दिया। रामू ने उसे खोलकर देखा कि उसमें उसके बिल के पैसे हैं। वह देखकर बहुत खुश हो गया। साथ में उस कागज को भी खोलकर देखा, तो हैरान हो गया, वह उसके नाम पर बिल था –

बचपन से तुम्हें पाला-पोसा - कुछ नहीं।
तुम्हारी बीमारी के समय दिन-रात जागना - कुछ नहीं।
तुम्हें दिन-रात पढ़ाना - कुछ नहीं।
कुल पैसे - कुछ नहीं।

रामू ने जब यह बिल देखा, तो उसकी आँखों से टप-टप आँसू बहने लगे। वह तुरन्त माँ के पास गया और उसकी स्नेह भरी गोद में अपना सिर रखकर, कुछ भी न बोलते हुए माँ की ममता का अनुभव करने लगा। माँ भी रामू का सिर सहलाते हुई बोली, 'क्यों रामू ! तुम्हारे बिल के पैसे मिल गए!' ○○○

रवि अपने छोटे भाई शशि के साथ प्रतिदिन समुद्र के किनारे टहलने जाता था। एकदिन अचानक दोनों में किसी बात को लेकर विवाद हो गया। रवि ने शशि को बहुत भला-बुरा कहा। शशि ने कुछ नहीं कहा, केवल उस दिन रेत पर लिख दिया, 'आज भैया ने मुझे बहुत अपशब्द कहे।'

अगले दिन दोनों फिर समुद्र के किनारे घूमने निकले। शशि को नहाने की इच्छा हुई। वह नहाने गया, किन्तु समुद्र की लहरों के बहाव में डूबने लगा। रवि ने झट से अपने छोटे भाई का हाथ पकड़ा और उसे बचा लिया। आज शशि ने पत्थर पर लिखा, 'आज भैया ने मुझे डूबने से बचाया।' रवि ने पूछा, 'जब मैंने तुम्हें बिना बात पर डाँटा, तो तुमने रेत पर लिखा और जब मैंने तुम्हें बचाया, तो पत्थर पर लिखा, ऐसा क्यों?'

तब बुद्धिमान शशि ने अपने बड़े भाई से कहा, 'जब हमें कोई दुख दे, तो रेत पर लिखना चाहिए, ताकि वह जल्दी से मिट जाए और जो हमारे लिए अच्छा करता है, उसे पत्थर पर लिखना चाहिए, क्योंकि उसकी भलाई हमें हमेशा याद रहेगी।'

इसका अर्थ यह है कि हमारे मित्र या परिचित व्यक्ति हमसे कोई अनुचित व्यवहार करते हैं, तो हम शीघ्र उसे भूल जाएँ और उसके अच्छे आचरण को ही ध्यान दें। ऐसा करने से हमारा मन सदैव स्फूर्ति और आनन्द में रहेगा और दूसरों के साथ हमारे सम्बन्धों में भी मधुरता आएगी। ○○○

सत्य पर संसार प्रतिष्ठित है

प्रिय युवा बन्धुओ !

हमें गर्व है कि हमें भारतवर्ष जैसे महान देश में जन्म लेने का सुअवसर मिला। हमें गर्व है कि हमें उदार शाश्वत भारतीय संस्कृति की शीतल स्नेह छाया में पलने का सुयोग मिला। हमें गर्व है कि हमें भारत की धरा पर विद्यमान और पल्लवित-पुष्पित विविध धर्म, मत, और संस्कृतियों से परिचित होने का सुअवसर मिला। हम गौरवशाली हैं कि हमें भारत की नदियों, झरनों, सागरों, पर्वतों, गिरि-गुफाओं और अरण्यों के सान्निध्य में अपने जीवन के निर्माण का सुअवसर मिला। इतना सब होते हुए भी कभी-भी कुछ काल के लिये या कभी-कभी दीर्घ काल के लिये मानव-समाज अपने गौरव को भूल जाता है और कुछ अवांछित सोचकर अपने व्यक्तित्व को बहुत छोटा बना लेता है। किन्तु जब उसे अपनी गलती का बोध होता है, तब बहुत समय बीत गया रहता है और वह अपने को अपराध के पाश में फँसकर तड़पता हुआ पाता है। अत: हमें सुविधा प्राप्त होने पर हमेशा, नहीं तो बीच-बीच में अपनी महान गौरवशाली संस्कृति के सभ्यता, संस्कार और नैतिक-आध्यात्मिक सिद्धान्तों का अध्ययन और चिन्तन-मनन करते रहना चाहिये।

आज समाज में कुछ लोगों ने यह धारणा बना ली है कि – "बिना रिश्वत के नौकरी नहीं मिलती, बिना झूठ बोले कहीं कुछ काम नहीं होता। बिना अहंकार, बल-प्रदर्शन के समाज में कोई सम्मानपूर्वक जी नहीं सकता। आजकल सच्चाई का युग नहीं है।" उन लोगों की ऐसी भावना के कारण ही भ्रष्टाचार, जन-पीड़न आदि प्रवृत्तियाँ समाज के प्रत्येक क्षेत्र में फैलकर लोगों को पीड़ित कर रही हैं।

एक बार मैंने एक कड़वे सच का सामना किया। एक लड़के ने मुझसे कहा – "स्वामीजी, आप हमेशा नैतिकता और सत्यवादिता की बात कर रहे हैं, किन्तु मैं समाज में ऐसे लोगों को जानता हूँ, जो अनैतिकता और असत्य के द्वारा ही प्रचुर धन अर्जित कर सुख-सुविधामय जीवन जीते हुए समाज में तथाकथित प्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में प्रसिद्ध हैं।" चौंकानेवाली बात यह है कि उसने कई ऐसे दृष्टान्त भी प्रस्तुत कर दिये। अन्त में उस युवक ने पूछा, "अच्छा आप ही बताइये स्वामीजी, क्या हम आज के परिवेश में सच्चाई से भौतिकता के शिखर पर पहुँचकर सम्मानित जीवन जी सकते हैं?

उस युवक के प्रश्न और दृष्टान्त थोड़ी देर के लिये भले ही किसी को उलझा दें, किन्तु यह आदर्शपथ का प्रेरक नहीं हो सकता। मैंने उससे कहा, 'देखो, आध्यात्मिक जीवन में सत्य और पवित्रता का कोई विकल्प नहीं है। आध्यत्मिक क्षेत्र में प्रवेश के लिये किसी भी व्यक्ति को इसका पालन करना अनिवार्य है। किन्तु जहाँ तक लौकिक जगत की बात है, वहाँ भी यह जगत सत्य पर प्रतिष्ठित है। सत्य के संघर्ष की गाथा केवल राजा हरिश्चन्द आदि तक ही जाकर सीमित नहीं हो गई, वह अनवरत आज तक चली आ रही है। आज भी बहुत-से लोग हैं, जो सच्चाई से भौतिक जगत में ऊँचाइयों पर हैं। वे भले ही विश्वप्रसिद्ध और राष्ट्रीय स्तर के न हों, किन्तु मध्यम जीवन जीनेवाले सामान्य से उच्च पदस्थ अधिकारियों तक ऐसे बहुत-से लोग हैं, जिन्हें मैं भी जानता हूँ, जो सच्चाई के मार्ग पर चलकर शान्ति और प्रसन्न हैं।

बिहार के बेतियाँ जिले में एक सज्जन की आँखों के सामने ही उनका एकमात्र छोटा नाती द्रुत गति से आ रही ट्रक की चपेट में आ गया। लोगों ने ड्राइवर को बहुत पीटा। उसे पुलिस को दे दिया। केस चला। अन्तिम गवाही थी। वकील और घर के लोगों ने उन सज्जन को बहुत समझाया कि आप ही एकमात्र गवाह हैं, आप ड्राइवर को ही दोष दीजियेगा। वे सुनकर मौन रहे। उन्होंने कोर्ट में कहा, "इसमें ड्राइवर का कोई दोष नहीं है, मेरा नाती ही ट्रक के सामने अचानक कूद गया।" वह ड्राइवर छूट गया।

कटिहार में एक डी. के पाण्डेय जज थे। उन्होंने एक तत्कालीन मन्त्री के पुत्र को नकल करते हुए पकड़ा और सबके रोकने पर भी तुरन्त उसकी परीक्षा निरस्त कर दी।

वाराणसी के डॉ. आनन्दवर्धन जी की भूमि-पंजिकरण के रजिस्ट्रार पद पर नियुक्ति हुई थी, सच्चे जीवन में बाधा प्रतीत होने पर उन्होंने वह कार्य छोड़ दिया और अध्यापन-कार्य स्वीकार किया। बिना रिश्वत दिये अपनी योग्यता से कितने बच्चे नौकरियाँ आज भी प्राप्त कर रहे हैं। ऐसे बहुत से दृष्टान्त हैं, जो सत्य की प्रबल शक्ति का संदेश देते हैं।

असत्य की मशाल क्षणिक तेज जलती है, लेकिन सद्य: नष्ट हो जाती है। रावण, कंस, दुर्योधन का उसी काल में वध हो गया, किन्तु श्रीराम, श्रीकृष्ण और पाण्डवों की पीढ़ियाँ युगों तक राज्य करती रहीं। इसलिये मेरे प्रिय बन्धु सत्य का आलम्बन लो, जो लोक-परलोक दोनों में सुख देता है। ○○○

साधक-जीवन कैसा हो? (१६)

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

प्रवचन-५

अब तक हम लोगों ने 'साधक का जीवन कैसा हो?' इस विषय के सिद्धान्त को देखा था। साधक के जीवन-दर्शन पर भी थोड़ी चर्चा हुई थी। आज भी दो सत्रों में चर्चा होगी, एक अभी और एक अपराह्न में। दर्शन के साथ उसके व्यावहारिक पक्ष को भी थोड़ा देखना चाहिए। उसमें दर्शन भी संयुक्त रहेगा। फिर भी जो चर्चाएँ हुई हैं, उस पर विचार कर हम आगे बढ़ेंगे। संक्षेप में ये सब बातें हुई थीं – यदि साधना करनी हो, तो साधक-साधिका को अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करना पड़ेगा। अपने विचारों और जीवन में कुछ मौलिक परिवर्तन करने पड़ेंगे।

आप में से अधिकांश लोग लगभग सभी गृहस्थ भक्त हैं। भगवान श्रीरामकृष्ण देव के उपदेशों के अनुसार आप अपने को कभी संसारी न समझें। कुछ माताएँ और भक्तवृन्द आकर कहते हैं, हम तो संसारी लोग हैं, संसार में डूबे हैं, क्या करें? यह साधना के प्रतिकूल है और रामकृष्ण भावधारा के तो एकदम ही विरुद्ध है। साधना की दृष्टि से आप लोग गृहस्थ भक्त हैं और प्रभु ने हम लोगों को संन्यासी-ब्रह्मचारी-भक्त बनाया है। हममें से कोई भी संसारी नहीं है। संसारी व्यक्ति वह होता है, जिसके जीवन का लक्ष्य ही संसार है। जिसके जीवन का दूसरा कोई उद्देश्य नहीं है। वह यही सोचता है कि कैसे अधिक से अधिक भोग कर सकें, धन-संग्रह कर सकें, संपत्ति-संग्रह कर सकें। कैसे अधिक-से-अधिक योग-क्षेम, भोग सामग्रियों का संग्रह करें, उसकी रक्षा करें और जितना हो सकें, भोग करें। वह इसी की प्राप्ति के लिए सारा जीवन प्रयत्न करता रहता है

यहाँ हम सबमें से कोई भी ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होता, तो आप कभी भी इस शिविर में नहीं आते। आप उन्हीं कार्यक्रमों में जाते, जहाँ आपको धन-सम्पत्ति आदि संग्रह के उपाय बताये जाते हैं। ५० वर्ष की उम्र में २५ वर्ष के युवक की तरह बने रहने की दवाई खिलाई जाती है। आप लोग वहीं जाते। यह स्थान ऐसे लोगों के लिए नहीं है। इसलिए दृढ़तापूर्वक मन में यह संस्कार बार-बार डालें कि हम गृहस्थ भक्त हैं, संसारी नहीं। इसलिए ऐसा कभी नहीं बोलना चाहिए कि हम संसारी हैं। क्योंकि जो हम बोलते हैं, उसे स्वयं हम भी तो सुनते हैं और जो हम सुनते हैं, उसका हमारे मन पर संस्कार होता है। इसलिए हम न कभी बोलें और न कभी सोचें कि हम संसारी हैं। आप सदा सोचें कि आप गृहस्थ भक्त हैं।

इसी सन्दर्भ में थोड़ी चर्चा करता हूँ। विशेषकर जब हम श्रीरामकृष्णवचनामृत पढ़ते हैं, माँ के उपदेश या श्रीरामकृष्ण देव के पार्षदों के उपदेश पढ़ते हैं, तो बहुत बार उसमें संन्यासी और गृहस्थ भक्तों के लिए उपदेश हैं। श्रीरामकृष्णवचनामृत में कहीं-कहीं यह लिखा है कि संन्यासियों के कड़े नियम हैं, ये गृहस्थों के लिए नहीं हैं। आपको यह ध्यान रखना चाहिए। आप अपनी दिनचर्या में, अपनी साधना पद्धति में, जीवन पद्धति में संन्यासियों के नियम व्यवस्था को न मिलायें। उससे आपकी साधना बाधित होगी। कई बार आप लोग मठ-मिशन या बाहर के संन्यासियों को देखकर उनका अनुकरण करने का प्रयास करते हैं। यह उचित नहीं है। उससे आपकी साधना में कठिनाई आयेगी। मैं इसकी विस्तार से चर्चा नहीं करूँगा। आप स्वयं सोचें सीमा रेखा कहाँ है तथा उसका उल्लंघन न करें। आप गृहस्थ भक्त हैं। आपके घर-संसार के प्रति कुछ कर्तव्य हैं। उन कर्तव्यों को यथासमय यथारीति पालन करते रहें।

अब कुछ मौलिक व्यावहारिक बातें जो संन्यासी और गृहस्थ, दोनों के लिए समान हैं, उस पर ध्यान दें। जैसे संसार अनित्य है। यह हमेशा रहने वाला नहीं है, इसका हमें अभ्यास करना चाहिए। हमें इसका अभ्यास करना ही पड़ेगा। बोध का सामान्यत: अर्थ जानना, समझना होता है। बोध शब्द का व्यवहार बहुत विशाल अर्थ में किया जाता है। जैसे किसी की मौसी है, किन्तु कुँआरी है, वह अपनी बड़ी बहन के पुत्र को पुत्र के समान प्यार करती है। उसके मन में माँ के प्रेम का थोड़ा बोध है, किन्तु अनुभव नहीं है, उसकी धारणा नहीं है। उसकी माँ को मातृत्व की जो धारणा है, वह धारणा छोटी बहन को नहीं है। मौसी को बोध है कि, हाँ जैसे मेरी दीदी अपने बच्चे को प्यार करती है, वह बच्चा मुझे भी माँ ही समझता है। तो बोध और धारणा में बहुत सूक्ष्म अन्तर है। आपको

हमको बोध तो अनित्य का करना है, किन्तु धारणा नित्य की करनी है।

कल चर्चा हुई थी कि जब हम अन्तर्यात्रा प्रारम्भ करेंगे, तो हमारी यात्रा कूटस्थ में जाकर समाप्त होगी। बाहर की यात्रा अनन्तकाल से चल रही है, उसमें सदैव हलचल रहती ही है। वह कभी समाप्त नहीं होती। क्योंकि वह अनादि और अनन्त है। देश और काल के महापुरुष श्रीरामकृष्ण देव भी यह उपदेश देते हैं कि जब विचार समाप्त हो जाते हैं, तभी तत्त्व का ज्ञान होता है, बोध होता है। मनुष्य स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। सरल शब्दों में शाश्वत शान्ति को उपलब्ध होता है। विचारों के अतीत का सत्य असीम और अनन्त है। जहाँ वाणी समाप्त हो जाती है और जो मन से भी अप्राप्त है। उसकी अनुभूति हो जाती है। विचार समाप्ति के पश्चात् जो अविचल स्थिति आती है, तब निश्चयात्मक बोध होता है। कैसे?

जैसे – इस जन्म में आपमें किसी की पुरुष-देह है, किसी की नारी-देह है। आपके मन में कभी इस सम्बन्ध में शंका नहीं होती है। इसे धारणा कहते हैं। धारणा बोध के बाद उत्पन्न होती है। इन्द्रियों से जो अनुभूति हुई है कि, मैं पुरुष हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं बालक हूँ, बालिका हूँ, मैं युवा हूँ, वृद्ध हूँ , ये जो धारणाएँ हैं, ये धारणाएँ जीवन के गठन में, जीवन-निर्माण में बड़ी सहायक होती हैं। अब हमें अनित्य का बोध कर नित्य की धारणा में प्रतिष्ठित होने का प्रयत्न करना है।

द्वितीय भेंट में ही श्रीरामकृष्ण देव मास्टर महाशय को बता रहे हैं। मास्टर महाशय जब पूछते हैं कि भगवान का भजन कैसे करें? कैसे भगवान में मन लगे? कई बातों में उसमें एक बात है कि विचार करना चाहिए। फिर ठाकुर स्वयं कहते हैं, क्या विचार करना चाहिए? नित्य-अनित्य का विचार करना चाहिए। यह नित्य-अनित्य क्या है? ठाकुर कहते हैं कि ईश्वर ही नित्य और बाकी सब अनित्य है।

साधक को अपनी साधना का प्रारम्भ इस विचार-प्रणाली से करना चाहिए। इससे मन तैयार होगा। नित्य-अनित्य का जब हम विचार करते हैं कि ईश्वर ही नित्य या सत्य है, बाकी सब अनित्य या असत्य है, तो यह धारणा निरन्तर साधना से एक दिन अनुभूति में उतर आयेगी। आप वचनामृत में देखेंगे, कई बार भगवान श्रीरामकृष्ण कहते हैं, और सुनने से क्या होगा? पढ़ने से क्या होगा? धारणा करो। धारणा अर्थात् अनुभूति पर आधारित धारणा, केवल विचार पर नहीं। हमारे पहने हुए वस्त्र हमारा शरीर नहीं है। किन्तु फिर भी उसी प्रकार दृढ़ विचार से एक दिन ऐसी अनुभूति होगी कि यह शरीर भी वस्त्र के समान हमारी आत्मा नहीं है, हमारा सच्चा स्वरूप नहीं है, जो गतिशील है, वह हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। हमारी आत्मा अचल और शाश्वत है।

हम अनित्य के बोध का अभ्यास करें। साधक को अनित्य और नित्य का अन्तर समझ लेना चाहिए। तथाकथित वेदान्त पढ़ने वाले लोग, किसी पत्रिका में, किसी किताब में, छोटे किसी पॅम्प्लेट में, तीन चार पत्ते का वेदान्त पढ़ लिया और अपने को वेदान्ती समझने लगे। वेदान्ती समझने के बाद कहने लगे, महाराज ! इसमें क्या है? हमने भी तो पढ़ा है। शंकराचार्य ने कहा है, ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापर:। किन्तु तथाकथित वेदान्तवादी भीतर से अनुभव करते हैं कि जगत सत्य है। वे कहते हैं, तुम क्या कहते हो, केवल जगत एव सत्यं – जगत ही सत्य है। यह मिथ्याचार है। यह मिथ्याचार हमारे व्यक्तित्व में क्यों है? यह केवल बाहरी यात्रा करने के कारण है। एक छोटी-सी बात कहूँ। आप सभी पढ़े-लिखे लोग हैं। यदि मैं अपनी बात कहूँ, तो आप सब विलक्षण हैं। एक व्यक्ति मुझसे कहता है, महाराज मेरे पास Dog (कुत्ता) है। अब डॉग कहते ही मेरे मन में कल्पना हो जायेगी, एक धारणा हो जायेगी कि इनके पास छोटा-बड़ा जैसा भी हो कुत्ता है। अब कोई दूसरा व्यक्ति आकर कहता है, महाराज मैंने God को देखा है। डॉग कहने पर मेरे मन में एक विशेष आकार-प्रकार के पशु की धारणा हुई, किन्तु गॉड या ईश्वर कहने पर हमारे मन में कोई निश्चित धारणा नहीं बनती है? कम-से-कम मेरे मन में तो नहीं बनती, आपकी बनती है, तो प्रणाम आपको, धन्य हैं आप लोग !

केवल अनित्य शब्द से जगत के अनित्यत्व की धारणा नहीं बनती है। यह जगत अनित्य है, ईश्वर नित्य है, इसे हम लोग कितनी ही बार रटते रहें, आप लोग आवृत्ति करते रहें, इससे अनित्यत्व की धारणा नहीं बनेगी। हमारे जीवन के अनुभवों से यह धारणा बनेगी। धारणा बनेगी महापुरुषों का संग करने से, जिन्होंने सचमुच जगत को मिथ्या समझा है। किस अनुभव से धारणा बनेगी?

(क्रमश:)

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (४)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिग्टंन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monastries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने स्वामी वीरेश्वरानन्द जी को आज्ञापालन करने की शिक्षा दी

बेलूड़ मठ पवित्र गंगा नदी के तट पर स्थित है। बेलूड़ मठ में तीन घाट हैं। ये घाट ईट्ट-पत्थरों से बने हुए हैं। इन तीनों घाटों में एक घाट पर केवल साधुगण स्नान करते हैं, जिसे 'स्वामीजी का घाट' कहते हैं। भक्तों और दर्शनार्थियों के लिए अन्य दो घाट हैं। गंगा में ज्वारभाटा आने के कारण गंगा का पानी नमकीन हो जाता है। निम्नलिखित घटना को बताने के लिए इन बातों को कहा गया ।

बेलूड़ मठ में यह परम्परा है कि ब्रह्मचर्य या संन्यास दीक्षा प्राप्त करनेवाले नये ब्रह्मचारी या संन्यासीगण वरिष्ठ संन्यासियों के पास जाकर उनसे आशीर्वाद और कुछ प्रेरक उपदेश के लिए प्रार्थना करते हैं। जब हमलोग अपनी ब्रह्मचर्य दीक्षा के बाद आशीर्वाद के लिए स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज के पास गये, तब उन्होंने यह घटना बताई –

''मैं बेलूड़ मठ में एक नये ब्रह्मचारी के रूप में आया था। एक दिन मैं कुछ संन्यासियों के साथ गंगा-स्नान करने के लिए गया। हमलोगों ने स्वामीजी के शयन-कक्ष के पूर्व में स्थित स्वामीजी के घाट पर स्नान किया। जब हम स्नान करने के लिए जा रहे थे, तो मठ-भवन के पूर्वी बरामदे के बेंच पर स्वामी ब्रह्मानन्द जी और स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज बैठे हुए थे।

''स्नान करने के बाद मैं दोनों महाराज के सामने से लौट रहा था। स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज ने मुझसे कहा, 'जाओ और थोड़ा पीकर देखो कि आज गंगा का पानी नमकीन है या नहीं?'

''स्नान करते समय मैंने जल पीया था, इसलिये मैंने महाराज से कहा, 'महाराज, आज गंगा का जल बहुत ही नमकीन है।'

''मेरा उत्तर सुनकर स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज बहुत गम्भीर हो गए। उन्होंने कहा, 'मैं तुमसे यह नहीं पूछ रहा हूँ !'

''मुझे लगा कि अवश्य ही मुझसे कुछ गलती हुई है। मैं जल्दी से वापस जाकर गंगा-जल को चखा तथा आकर स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज से कहा, 'महाराज, जल नमकीन है, मैंने उसको चखकर देखा है।'

''स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज मेरे उत्तर से पूर्ण रूप से उदासीन दीखे। ऐसा लगा कि उन्होंने मेरी बातों को सुना ही नहीं। वे गम्भीर मुद्रा में थे। अत: मैं चुपचाप वहाँ से अपने कमरे में चला गया। बाद में मैं समझा कि वे मुझे आज्ञापालन करने की शिक्षा देना चाहते थे। वे मुझे यह सिखाना चाहते थे कि संन्यासी को आध्यात्मिक उन्नति के लिए अपने गुरु तथा वरिष्ठों की आज्ञा का पालन बिना किसी तर्क या प्रश्न के करना चाहिए। मैं गंगा-स्नान करके वापस आ रहा हूँ, इसे स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज जानते थे, फिर भी उन्होंने मुझे पुन: गंगा में जाकर जल का स्वाद लेने के लिए कहा। लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। इसीलिये उन्होंने वैसा व्यवहार किया। वास्तव में इससे उनको कुछ भी लेना-देना नहीं था कि जल नमकीन है या नहीं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात थी कि वे मुझे आज्ञापालन करने की मूल्यवान शिक्षा देना चाहते थे।''

श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्यों की कुछ विशेषताएँ

स्वामी गंगेशानन्द जी स्वामी शिवानन्द जी (महापुरुष महाराज) के कई वर्षों तक सचिव थे। उन्होंने हमें श्रीरामकृष्ण देव के शिष्यों के कुछ संस्मरण सुनाये थे –

''वे लोग एक-दूसरे से बहुत प्रेम और परस्पर विश्वास करते थे। महापुरुष महाराज रुपयों के हिसाब-किताब के बारे में मुझ पर पूर्ण विश्वास करते थे । साथ ही दूसरों से कहते कि मैं बहुत अच्छी मालिश भी कर सकता हूँ। वे ऐसा क्यों कहते थे? इसका कारण उन्होंने स्वयं बताया था, 'क्योंकि राजा (स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज) ने मुझसे (महापुरुष महाराज से) कहा कि द्विजेन (स्वामी गंगेशानन्द) बहुत अच्छी तरह मालिश करता है तथा उस पर रुपयों के हिसाब-किताब

के सम्बन्ध में पूर्ण विश्वास किया जा सकता है।' इस प्रकार महापुरुष महाराज अपने गुरुभाई स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज पर पूर्णतः विश्वास करते थे।

''श्रीरामकृष्ण के शिष्यों की यदि एक बार किसी के बारे में अच्छी धारणा बन जाती, तो उसे सहजता से मिटाया नहीं जा सकता था। यहाँ तक कि यदि उस व्यक्ति से कोई भूल भी हो जाए, तो भी वे उस ओर ध्यान नहीं देते थे। नहीं तो, मेरे जैसा व्यक्ति कैसे उन लोगों के पास रह सकता था।

''अहा ! वे लोग कितने उदार थे ! क्रिकेट के प्रति मेरे झुकाव को महापुरुष महाराज जानते थे। कोलकाता में जब क्रिकेट का कोई अच्छा मैच होता, तो वे मुझे रुपये देकर कहते, 'जाओ, टिकट खरीदकर खेल का आनन्द लो।' मैच देखकर वापस आने पर वे मुझसे मैच के बारे में विस्तार से पूछते। वास्तव में, उनकी ऐसी निरर्थक वस्तुओं में कोई व्यक्तिगत रुचि नहीं थी। श्रीरामकृष्ण के अन्य शिष्यों की तरह ही महापुरुष महाराज भी स्वाभाविक रूप से ईश्वरीय भाव में लीन रहते थे । किन्तु प्रेम एवं दया के कारण, वे मेरे बचकाने स्तर पर आ जाया करते और क्रिकेट मैच की जानकारी लेते थे ।'' **(क्रमशः)**

स्वामी विवेकानन्द उस समय अमेरिका में प्रसिद्ध हो चुके थे। किसी एक स्टेशन पर ट्रेन से उतरते ही उनका भव्य स्वागत किया जा रहा था। इतने में एक नीग्रो कुली ने उनकी ओर अपना हाथ बढ़ाया और कहा कि उसने सुना है कि वे उसी जाति के हैं और उनके गौरव से नीग्रो समाज गौरव का अनुभव करता है। स्वामीजी ने तुरन्त उस कुली की ओर अपना हाथ बढ़ाकर कहा, ''धन्यवाद भाई, तुम्हें बहुत-बहुत धन्यवाद।'' उन्होंने कुली से यह नहीं कहा कि वे नीग्रो नहीं हैं। अमेरिका के अनेक होटलों में उन्हें नीग्रो मानकर घुसने नहीं दिया जाता था तथा उन्हें अपमानित भी किया जाता था। परन्तु उन्होंने कभी भी यह नहीं कहा कि वे नीग्रो नहीं हैं। एकबार एक पाश्चात्य शिष्य ने उनसे पूछा था कि वे इन परिस्थितियों में अपना वास्तविक परिचय क्यों नहीं देते? स्वामीजी ने कहा, ''क्या हम दूसरों को नीचा दिखाकर स्वयं ऊँचे हो जाएँगे? मैंने इसलिए जन्म ग्रहण नहीं किया है।''

हृदय सदैव विहार करैं

रामकुमार गौड़, वाराणसी

जो युगअवतार रूप में आकर सरल सरस व्यवहार करैं,
जो जग जननी साक्षात् सभी से अनुपम प्रेम दुलार करैं ।
जो युगाचार्य युगनायक परहितनिरत विवेक विहार करैं,
प्रभु रामकृष्ण श्रीमाँ स्वामीजी हृदय सदैव विहार करैं ।।

जो ईशप्रेम में तन्मय व्याकुल निरभिमान आचार करैं,
जो निष्कलंक निर्मल रह सबसे निश्छल प्रेम अपार करैं ।
जो त्याग और सेवा को ही युगधर्म पुकार प्रचार करैं,
प्रभु रामकृष्ण श्रीमाँ स्वामीजी हृदय सदैव विहार करैं ।।

जो सब धर्मों का साधन करके उन्हें सत्य स्वीकार करैं,
जो भेद-बुद्धिविरहित माँ सबसे दिव्य प्रेम व्यवहार करैं ।
जो मानव का देवत्व जगाकर बल साहस संचार करैं,
प्रभु रामकृष्ण श्रीमाँ स्वामीजी हृदय सदैव विहार करैं ।।

जो कथनी-करनी एक बनाकर सबको सद्-उपदेश करैं,
जो चिरमंगलकारिणी मातु जग में सबका कल्याण करैं ।
जो अखिल विश्वकल्याणव्रती हो सदा जगत उपकार करैं,
प्रभु रामकृष्ण श्रीमाँ स्वामीजी हृदय सदैव विहार करैं ।।

जो निखिल विश्व को मातृभावमय देख समझ व्यवहार करैं,
जो एकमात्र सच्ची माँ सबको अपना कह स्वीकार करैं ।
जो प्रभुवर के शिवज्ञान से सेवा के व्रत को साकार करैं,
प्रभु रामकृष्ण श्रीमाँ स्वामीजी हृदय सदैव विहार करैं ।।

जो भक्तिपटावृत रहकर के अद्वैत ज्ञान व्यवहार करैं,
जो सबको मातृस्नेह-बन्धन में बाँध दोष-परिहार करैं ।
जो बल साहस जाग्रत कर दुर्बलता पर सतत प्रहार करैं,
प्रभु रामकृष्ण श्रीमाँ स्वामीजी हृदय सदैव विहार करैं ।।

कीजिये सत्संग

डॉ. दिलीप धींग

कुसंग का ज्वार मिटाने कीजिये सत्संग,
सत्संग से खिल उठेंगे, जीवन के रंग ।
जीवन के रंगों में हो सद्गुणों का संग,
सद्गुणों से डोर से उड़े कीर्ति पतंग ।।

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

श्रीशंकराचार्य

चिंतामणिरिव दुर्लभमिह किं कथयामि तच्चतुर्भद्रम्।
किं तद्वदन्ति भूयो विधूततमसो विशेषेण।।२४।।
दानं प्रियवाक्सहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौर्यम्।
वित्तं त्यागसमेतं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम्।।२५।।

प्र. इस संसार में चिन्तामणि के समान दुर्लभ क्या है?

उ. चतुर्भद्र (चार कल्याणकारी वस्तुएँ)।

प्र. निर्मलमति विद्वान चतुर्भद्र किसे कहते हैं?

उ. इस विषय में कहता हूँ - प्रथम है प्रियवाणी सहित दान, दूसरा है गर्व से रहित ज्ञान, तीसरा है क्षमा से युक्त शौर्य और चौथा है त्याग से युक्त धन।

किं शोच्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्तम् औदार्यम्।
कः पूज्यो विद्वद्भिः स्वभावतः सर्वदा विनीतो यः।।२६।।

प्र. शोचनीय क्या है?

उ. वैभव होने पर भी कृपणता होना शोचनीय है।

प्र. प्रशंसनीय क्या है?

उ. वैभव होने पर भी उदारता होना प्रशंसनीय है।

प्र. विद्वानों से भी पूजा करने योग्य कौन है?

उ. जो स्वभाव से सर्वदा विनयशील है।

कः कुलकमलदिनेशः सति गुणविभवेऽपि यो नम्रः।
कस्य वशे जगदेतत् प्रियहितवचनस्य धर्मनिरतस्य।।२७।।

प्र. कुलरूपी कमल के लिए सूर्य के समान कौन है?

उ. गुणों से समृद्ध होने पर भी जो नम्र है, वही कुलकमल के लिए सूर्य के समान है।

प्र. यह समस्त जगत किसके वश में है?

उ. जो प्रिय और हितकर वचन बोलता है तथा धर्मपरायण है, उसी के वश में यह सारा जगत है।

विद्वन्मनोहरा का सत्कविता बोधवनिता च।
कं न स्पृशति विपत्तिः प्रवृद्धवचनानुवर्तिनं दान्तम्।।२८।।

प्र. विद्वानों के मन को हरने वाली कौन-सी वस्तु है?

उ. सुन्दर कविता और ज्ञानरूपी वनिता विद्वानों के मन को हरने वाली वस्तु है।

प्र. विपत्ति किसे स्पर्श नहीं करती?

उ. जो ज्ञानवृद्ध महापुरुषों के वचनानुसार आचरण करते हैं और जितेन्द्रिय हैं, उन्हें विपत्ति स्पर्श नहीं करती।

कस्मै स्पृहयति कमला त्वनलसचित्ताय नीतिवृत्ताय।
त्यजति च कं सहसा द्विजगुरुसुरनिन्दाकरं च सालस्यम्।।२९।।

प्र. लक्ष्मी किसे चाहती है?

उ. जो आलसी नहीं है और नीतिपरायण है, उसे ही लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

प्र. लक्ष्मी सहसा किसे छोड़ देती है?

उ. जो ब्राह्मण, गुरु और देवताओं की निन्दा करता है और आलसी है, लक्ष्मी उसे शीघ्र त्याग देती है।

कुत्र विधेयो वासः सज्जननिकटेऽथवा काश्याम्।
कः परिहार्यो देशः पिशुनयुतो लुब्धभूपश्च।।३०।।

प्र. कहाँ निवास करना चाहिए?

उ. सज्जनों के निकट अथवा काशी में निवास करना चाहिए।

प्र. किस देश को छोड़ देना चाहिए?

उ. जो देश चुगलखोरों और लोभी राजाओं से भरा हुआ है, उसे छोड़ देना चाहिए।

केनाशोच्यः पुरुषः प्रणतकलत्रेण धीरविभवेन।
इह भुवने कः शोच्यः सत्यपि विभवे न यो दाता।।३१।।

प्र. पुरुष किससे शोक-रहित होता है ?

उ. विनम्रशील भार्या और धैर्यरूपी धन से पुरुष शोकरहित होता है।

प्र. इस संसार में शोचनीय कौन है?

उ. धन रहने पर भी जो दान नहीं करता, वह शोचनीय है।

किं लघुताया मूलं प्राकृतपुरुषेषु या याञ्चा।
रामादपि कः शूरः स्मरशरनिहतो न यश्चलति।।३२।।

प्र. छोटेपन का कारण क्या है?

उ. विषयी-पामर लोगों से याचना करना छोटापन है।

प्र. भगवान राम से भी अधिक शूर कौन है?

उ. जो कामदेव के बाणों से आहत होकर भी विचलित न हो।

भगिनी निवेदिता : भारतमाता की पुकार

स्वामी तन्निष्ठानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके जीवन और सन्देश से सम्बन्धित यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका के प्रथम दो वर्षो के निवास काल में अनेक स्थानों पर वेदान्त के केन्द्र स्थापित किये। उसके बाद वे इंग्लैण्ड आये और कुछ महीने वहाँ वेन्दात का बीजारोपण कर पुन: अमेरिका चले गये। स्वामीजी के प्रथम इंग्लैण्ड के निवास काल में उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि थी भगिनी निवेदिता। स्वामीजी ने निवेदिता के विशेष गुणों को जान लिया था। अमेरिका जाने के पहले स्वामीजी ने निवेदिता को महान कार्य करने के लिए प्रेरित किया। कुछ महीने अमेरिका में बिता कर वे अप्रैल, १८९६ में इंग्लैण्ड पहुँचेऔर अपने कार्य में लग गये। वहाँ सप्ताह में ज्ञानयोग, भक्तियोग, शिक्षा जैसे विभिन्न विषयों पर उनके ओजस्वी व्याख्यान होते थे। शुक्रवार को प्रश्नोत्तरी होती थी।

निवेदिता और उनके मित्र स्वामीजी का व्याख्यान सुनने नियमित जाते। निवेदिता की दृष्टि में स्वामीजी एक आदर्श संन्यासी थे। एक दिन प्रश्नोत्तर के समय स्वामीजी ने अचानक खड़े होकर घोषणा की, ''क्या इतने बड़े संसार में २० ऐसे स्त्री-पुरुष भी नहीं हैं, जो किसी शहर के मुख्य मार्ग पर सबके समक्ष खड़े होकर यह बोलने का साहस करें कि उनमें ईश्वरीय अंश विद्यमान है। बोलिए, आप में से कौन खड़ा होकर सबके समक्ष यह स्वीकार करेगा?''

स्वामीजी के इन्हीं शब्दों ने निवेदिता के हृदय को आलोड़ित कर दिया। वे स्वामीजी की सहायता के लिए व्यग्र हो उठीं। इस वाणी ने उन्हें इतना प्रोत्साहित किया कि स्वामीजी के निर्देशन में कार्य करने की तीव्र इच्छा उनके मन में जागृत हो उठी। परन्तु कार्य कैसे करना है, यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था। अत: निवेदिता ने मार्गदर्शन के लिये स्वामीजी को एक पत्र लिखा, ताकि वे उनकी कार्यप्रणाली समझकर उनकी सहायता कर सकें।

इस पत्र के उत्तर में स्वामीजी ने लिखा था, ''वस्तुत: मेरे जीवन के आदर्श को इन कुछ शब्दों में समझा जा सकता है – मनुष्य जाति को उसके देवत्व तक ले जाना ! उनके दिव्यस्वरूप या ईश्वरत्व का उन्हें अनुभव कराना ही मेरा लक्ष्य है। जीवन के प्रत्येक कार्यकलापों में, प्रत्येक क्षेत्र में इसे कैसे प्रकट किया जाय, इसका उपाय बताना ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। यह संसार अन्धविश्वासों और कुसंस्कारों के बन्धनों में जकड़ा हुआ है। मुझे इन अन्धविश्वासों की बेड़ियों से पीड़ित और अत्याचार सहनेवाले स्त्री-पुरुषों पर दया आती है। पर मुझे इन अत्याचारियों के प्रति अधिक दया आती है, जो इन अन्धविश्वासों के चलते, अज्ञानता के कारण लोगों को कष्ट देते हैं। ... मेरी दृढ़ धारणा है कि तुम अन्धविश्वासी नहीं हो। तुममें कुसंस्कार नहीं हैं। मुझे विश्वास है, तुममें इतनी क्षमता है कि तुम इस संसार में क्रान्ति ला सकती हो, सारे संसार को प्रेरणा दे सकती हो। दूसरे लोग भी आकर तुम्हारे कार्य में सहयोग करेंगे। साहसिक वाणी और उससे भी अधिक साहसिक कार्यों की हमें आज आवश्यकता है। जागो! जागो ! महान व्यक्तियो जागो ! संसार दुख की अग्नि में जल रहा है। ऐसे समय तुम कैसे सो सकते हो? चलो, उस ईश्वर को तब तक पुकारें, जब तक वह जाग्रत न हो जाए, जब तक तुम्हारे भीतर विद्यमान ईश्वर तुम्हारी पुकार का उत्तर न दे दे। इससे अधिक जीवन में क्या चाहिये? इससे अधिक इस जीवन में हमें कौन-सा महानतम कार्य करना है? ... योजनाएँ स्वयं बनेंगी और साकार होंगी। मैं कभी भी किसी कार्य की योजना नहीं बनाता। योजनाएँ स्वयं बनती जाती हैं और कार्य स्वयं होने लगता है। मैं तो केवल कहता हूँ – जागो, जागो ! मेरे आशीर्वाद अनन्त काल तक के लिए तुम्हारे साथ हैं।''

निवेदिता को स्वामीजी का यह पत्र मिला। किन्तु इस पत्र को पढ़कर उन्हें लगा कि इसमें कार्य हेतु मार्गदर्शन नहीं किया गया है। एक दिन स्वामीजी भारतीय स्त्रियों के बारे में कह रहे थे। भारतीय स्त्रियों को शिक्षा के साधन उपलब्ध नहीं थे। स्वामीजी चाहते थे कि उन्हें उचित शिक्षा मिले। उन्होंने निवेदिता से कहा, ''भारतीय नारियों के लिए मेरी कुछ योजना है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत के कार्य में तुम्हारा महान भविष्य है। भारत के लिए, विशेषकर भारत की नारियों के लिए, पुरुष की अपेक्षा नारी की, एक

सिंहिनी की आवश्यकता है। भारतमाता अभी महीयसी नारी को जन्म नहीं दे पा रही है, इसीलिए उसे दूसरे राष्ट्र से उधार लेना पड़ेगा। तुम ठीक वैसी नारी हो, जिसकी हमें आवश्यकता है।''

निवेदिता को स्वामीजी से जिस स्पष्ट निर्देश की आवश्यकता थी, उन्हें वह मिल गया। वे जानती थीं कि उनके जीवन में परिवर्तन लानेवाली यही भारतमाता की पुकार थी। वे इसी प्रकाश की प्रतीक्षा कर रही थीं, जो उनके जीवन के अन्धकार को दूर कर सके। अब उन्हें प्रकाश की एक किरण मिल गयी थी। उन्हें विश्वास था कि यही किरण उन्हें प्रगतिपथ की ओर अग्रसर करेगी। उन्होने स्वामीजी के कार्य के लिए भारतमाता की पुकार सुनी और प्रगतिपथ पर आगे बढ़ चलीं।

शिक्षा, शिक्षा और केवल शिक्षा ! शिक्षा ही भारतीय महिलाओं की स्थिति सुधार सकती है। उन दिनों भारतीय नारियों की वैसी स्थिति अशिक्षा के कारण थी। इतने वर्षो तक नारियाँ शिक्षा से वंचित थीं। जनसाधारण तथा नारियों की उपेक्षा से भारतवासियों की कैसी दुर्दशा हुई थी ! इतना पतन भारतमाता की इन अमृततुल्य सन्तानों का ! नियति की यह कैसी विडम्बना थी ! जहाँ सीता, सावित्री, दमयन्ती जैसी महीयसी नारीयों ने जन्म लिया, उस देश की नारियों को शिक्षा प्रदान करने के लिए एक विदेशी महिला का आवाहन करते समय स्वामी विवेकानन्द की कैसी मनोदशा हुई होगी, इसका हमें थोड़ा सा भी अनुमान नहीं है !

स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से दूसरी बार अप्रैल, १८९६ में इंग्लैण्ड पहुँचे। निवेदिता ने स्वामीजी को अपने व्यक्तिगत जीवन के बारे में बताया। स्वामीजी से मिलकर उनके जीवन में नई शक्ति का संचार हुआ। वे अब स्वामीजी के भारतीय कार्यों के लिये उनका अभिन्न अंग बनना चाहती थीं। स्वामीजी की भी निवेदिता के प्रति उच्च धारणा थी। उन्होंने एक पत्र में निवेदिता को लिखा था, ''मुझे तुम्हारे बारे में कुछ कहना है। प्रिय कुमारी नोबल, तुममें जो ममता, भक्ति, विश्वास तथा गुण विद्यमान हैं, यदि किसी को ये गुण मिल जाएँ, तो वह जीवन भर चाहे जितना भी परिश्रम क्यों न करे, इन गुणों के द्वारा ही उसे सौगुना फल मिल जाएगा। तुम्हारा सर्वांगीण मंगल हो ! ... मेरा सारा जीवन तुम्हारे कार्य में अर्पित है।''

स्वामीजी ने निवेदिता को भारतीय नारियों के लिए कार्य करने हेतु भारत में निमन्त्रित किया। स्वामीजी और निवेदिता दोनों का एक ही लक्ष्य था – दीन-दुखियों की सेवा के द्वारा ईश्वर की उपासना। निवेदिता भी ईश्वर को अपना जीवन समर्पित कर ईश्वर की सन्तानों की सेवा करना चाहती थीं। स्वामीजी विश्वविजयी होकर जनवरी, १८९७ में भारत लौटे। उनके साथ सेवियर दम्पती थे। इससे निवेदिता को भारत जाने की प्रेरणा मिली। स्वामीजी जानते थे की भारत में कार्य करना निवेदिता के लिए सहज नहीं होगा। उन्होंने स्वीकृति के साथ निवेदिता को सचेत किया – ''यहाँ बाधाएँ बहुत हैं। दुख, कुसंस्कार और दासता की तुम कल्पना नहीं कर सकती। तुम्हें अर्धनग्न स्त्री-पुरुषों के समूह में रहना होगा, जिनके जातिभेद से विचित्र आचार-विचार हैं, जो भय-द्वेष से गोरे लोगों से दूर रहना चाहते हैं और गोरे लोग भी स्वयं भी जिनसे बहुत घृणा करते हैं। दूसरी ओर, गोरे जातिवाले तुम्हें सनकी समझेंगे और तुम्हारे आचार-व्यवहार को शंका की दृष्टि से देखेंगे। यहाँ भयंकर गर्मी पड़ती है; अधिकांश स्थानों में हमारा शीतकाल तुम्हारी गर्मी के समान होता है और दक्षिण में हमेशा आग बरसती रहती है। नगरों के बाहर विलायती आराम की कोई सामग्री नहीं मिल सकती। इस पर भी यदि तुम कार्य करने का साहस करोगी, तो हम तुम्हारा शत-शत स्वागत करेंगे। जहाँ तक मेरी बात है, अन्य स्थानों जैसा मैं यहाँ भी कुछ नहीं हूँ, किन्तु मैं क्षमतानुसार तुम्हारी सहायता करूँगा। कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने से पहले तुमको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए, यदि कार्य करने के बाद तुम असफल या अप्रसन्न हो जाओगी, तो मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि चाहे तुम भारत के लिए कार्य करो या न करो, तुम वेदान्त को त्याग दो या उसमें स्थित रहो, मैं मृत्यु-पर्यन्त तुम्हारे साथ हूँ। हाथी के दाँत बाहर निकलते हैं, परन्तु अन्दर नहीं जाते। इसी तरह मनुष्य के वचन वापस नहीं जा सकते। यह मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ। मैं पुन: तुम्हें सावधान करता हूँ। तुमको अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। ...

''श्रीमती सेवियर गुणवती, दयालु और नारियों में रत्न हैं। केवल सेवियर दम्पती ऐसे अंग्रेज हैं, जो भारतवासियों से घृणा नहीं करते। ... तुम आकर उन्हें अपने साथ काम में लगाओ। इससे तुम्हें भी सहायता मिलेगी और उन्हें भी। परन्तु अन्त में आत्मनिर्भर होना परमावश्यक है।''

अन्तत: निवेदिता को भारत पधारने के लिये स्वामीजी का सुस्पष्ट निर्देश मिला। अब उन्हें सुनाई दे रही थी भारतमाता की आर्त पुकार। अब वे भारत आने के लिए तत्पर थीं, क्योंकि उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था भारतमाता का आह्वान ! ○○○

भारत की ऋषि परम्परा (४)

स्वामी सत्यमयानन्द

पुलह

महर्षि पुलह ब्रह्मा के पाँचवे मानसपुत्र थे। सृष्टि के विस्तार हेतु ब्रह्मा ने सप्तऋषियों के अतिरिक्त दस प्रजापतियों की भी उत्पत्ति की थी। इस तरह पृथ्वी पर जो भी जीव हुए, उनके ये प्रथम पूर्वज हुए। कहीं-कहीं प्रजापतियों की संख्या इक्कीस भी बताई जाती है। त्याग और पवित्रता में ये ऋषिगण देवताओं से भी आगे थे। इनका प्रवृत्ति धर्म का मार्ग था, अथात् संसार में रहते हुए और शास्त्र की विधि-निषेध की मर्यादाओं का निष्ठा से पालन करते हुए धर्म-परायण जीवन व्यतीत करना। इस प्रकार के महान जीवन से उन्नत और आध्यात्मिक पुरुषों का निर्माण होता है।

महर्षि पुलह एकबार सर्वोच्च ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हेतु ऋषिकुमार सनन्दन (सनकादि कुमारों में से एक) की शरण में गए। उसके बाद उन्होंने यह ज्ञान महर्षि गौतम को दिया। महर्षि पुलह ने अपने पिता ब्रह्मा की आराधना की और अलकनन्दा नदी के तट पर घोर तपस्या की। तदनन्तर वे इन्द्र की सभा में एक सम्माननीय सभासद हुए।

महर्षि पुलह की पत्नी का नाम क्षमा था। पुलह स्वयं भी करुणा के मूर्त विग्रह थे। जब असुर कल्मसद ने वशिष्ठ के पुत्र शक्ति का वध कर दिया तब शक्ति के पुत्र पराशर ने प्रतिशोध हेतु विराट यज्ञ का अनुष्ठान किया जिसमें सहस्रों असुरों का नाश संभावित था। महर्षि पुलह ने करुणावश होकर पराशर को समस्त असुर जाति के संहार के लिए रोका और आशीर्वाद दिया।

सन्त स्वभाव वाले राजा भरत जब वृद्धावस्था में पहुँचे, तब अपना राज्य और सम्पत्ति पुत्र को सौंपकर तापस का जीवन व्यतीत करने हेतु महर्षि पुलह के आश्रम में गए। जैसा कि प्रसिद्ध है कि राजा भरत को एक मृगशावक के प्रति मोह के कारण सर्वोच्च ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ और पुन: मृगशावक के रूप में जन्म लेना पड़ा। वह मृगशावक पुन: उसी आश्रम के समीप रहने लगा, और अपने कर्मों के शेष होने पर मृत्यु को प्राप्त हुआ।

महर्षि पुलह भगवान शिव के बड़े भक्त थे। इनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान शिवलिंग के रूप में प्रकट हुए। यह शिवलिंग पुलहेश्वर के नाम से काशी में विद्यमान है।

पुलस्त्य

महर्षि पुलस्तय ब्रह्मा के एक मानसपुत्र थे, उन्हें ब्रह्मर्षि, ब्रह्मयोनि, विप्रर्षि अथवा विप्रयोगी आदि विशेषणों से भी सम्बोधित किया जाता है। वे योगविद्या के आचार्य माने जाते हैं। मनुष्य जाति को विशाल पौराणिक साहित्य उपलब्ध कराने में इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

एकबार महान ऋषि पराशर राक्षसों पर क्रुद्ध हो गए और उन्होंने उनके कुल-संहार का निश्चय कर एक विराट यज्ञ का अनुष्ठान किया। यह जानकर महर्षि पुलस्त्य पराशर से मिलने गए और उन्हें इस घृणित कार्य में अग्रसर होने के लिए रोका। पराशर के पितामह ऋषि वशिष्ठ पुलस्त्य से बड़े प्रेम से मिले। पराशर की सहमति पर प्रसन्न होकर दोनों ऋषियों ने उन्हें ब्रह्म ज्ञान के गुह्य उपदेश दिए और पौराणिक ज्ञान का भी भण्डार प्रदान किया। ऋषि पुलस्त्य के कहने पर ही पराशर ने ऋषि मैत्रेय को श्रीमद्भागवतम् का श्रवण कराया।

देवर्षि नारद ऋषि पुलस्त्य के पास गए और उनसे वामन पुराण की जिज्ञासा प्रकट की। यह ग्रन्थ वर्तमान में हमें नारद और पुलस्त्य के संवाद के रूप में उपलब्ध है। पुलस्त्य के पुत्र आत्मदर्शी निदाघ को ऋषि ऋभु ने अद्वैत वेदान्त की शिक्षा दी थी, 'आत्मा सर्वत्र, सर्वव्याप्त और सूक्ष्म है; इसका न जन्म है और न ही मरण है; मैं वो नहीं हूँ जो तुम देख रहे हो और न ही तुम वह हो जो मैं देख रहा हूँ।'

पुलस्त्य की हविर्भू अथवा मानीनि, प्रीति, सन्ध्या और प्रतीचि नाम की पत्नियाँ थीं। मानीनि तृणबिन्दु की पुत्री थी और प्रीति दक्ष प्रजापति की। पुलस्त्य को मानीनि से विश्रवा नामक पुत्र हुए, जो कालान्तर में रावण और कुम्भकर्ण के पिता हुए। धन के देवता कुबेर का जन्म विश्रवा की दो पत्नियों में से एक देववर्णिनी से हुआ। एकबार रावण जब मदोन्मत्त होकर अन्य राज्यों पर विजय प्राप्त कर रहा था, तब राजा कार्तवीर्य सहस्रार्जुन ने उसको पराजित कर बन्दी बना दिया। पुलस्त्य उनके पास गए और अपने पौत्र रावण को क्षमादान करने का आग्रह किया। भीष्ण को पौराणिक ज्ञान और तीर्थ-स्थानों के विषय में पुलस्त्य ने उपदेश दिए थे। वे महावीर अर्जुन के जन्म समारोह में भी उपस्थित थे। किन्नर, यक्ष, गन्धर्व आदि विभिन्न उपदेवताओं की उत्पत्ति महर्षि पुलस्त्य द्वारा कही जाती है। ○○○

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

७०. उपकोशल को ज्ञान-प्राप्ति

इसके बाद एक कहानी सत्यकाम के एक शिष्य उपकोशल कमलायन के बारे में है। ये सत्यकाम से शिक्षा प्राप्त करने के लिए उनके पास गये थे और उनके साथ कुछ समय तक निवास किया था।

सत्यकाम कार्यवश कहीं यात्रा पर गये। इससे शिष्य के मन में बड़ी उदासी आ गयी। जब गुरुपत्नी ने उसके पास आकर पूछा, ''वत्स, तुम खाते क्यों नहीं?'' तब बालक ने कहा, ''मेरा मन कुछ ठीक नहीं है, इसलिए मैं कुछ खा नहीं सकता।'' इसी समय, वह जिस अग्नि में हवन कर रहा था, उसमें से एक आवाज आयी, ''प्राण ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है, सुख ब्रह्म है, तुम ब्रह्म को जानो।''

उसने उत्तर दिया, ''यह तो मैं जानता हूँ कि प्राण ब्रह्म है, परन्तु आकाश और सुख भी ब्रह्म है, यह मैं नहीं जानता।''

तब अग्नि ने उसे समझाया कि आकाश और सुख – इन दो शब्दों का अर्थ वस्तुत: एक ही है, यानी हृदय में निवास करनेवाला चिदाकाश (या विशुद्ध बुद्धि)। इस प्रकार अग्नि ने प्राण और चिदाकाश के रूप में उसे ब्रह्म का उपदेश दिया।

तदुपरान्त अग्नि ने फिर उपदेश दिया, ''यह पृथ्वी, यह अन्न, यह सूर्य जिसकी तुम उपासना करते हो, ये सभी ब्रह्म के ही रूप हैं। सूर्य में जो पुरुष दिखाई पड़ता है, वह मैं ही हूँ। जो इसे जानता है और उस ब्रह्म का ध्यान करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, उसे लम्बी आयु मिलती है और वह सुखी होता है। जो समस्त दिशाओं में, चन्द्रमा में, तारों में और जल में निवास करता है, वह भी मैं हूँ। जो इस प्राण में, आकाश में, अन्तरिक्ष में और विद्युत में रहता है, वह भी मैं ही हूँ।''

यहाँ भी हमें व्यावहारिक धर्म का उदाहरण मिलता है। अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि जिन-जिन वस्तुओं की वे उपासना करते थे, वे वस्तुएँ और वह वाणी जिससे वे परिचित थे, वे ही इन कथाओं के विषय हैं। ये कथाएँ उनकी व्याख्या करती हैं और उन्हें उच्चतर अर्थ प्रदान करती हैं।

यही वेदान्त का सच्चा तथा व्यावहारिक पक्ष है। यह व्यक्ति को उड़ा नहीं देता, बल्कि उसकी व्याख्या करता है। वह व्यक्तित्व को मिटाता नहीं, बल्कि सच्चे व्यक्तित्व को दिखाते हुए उसकी व्याख्या करता है। वेदान्त यह नहीं कहता कि यह जगत् व्यर्थ है और उसका अस्तित्व नहीं है, अपितु कहता है, ''जगत् क्या है, इसे समझो, ताकि यह तुम्हारा कोई अनिष्ट न कर सके।''

उस वाणी ने उपकोशल से यह नहीं कहा कि सूर्य, चन्द्र, विद्युत या अन्य कुछ, जिसकी वे उपासना करते थे, वह एकदम गलत है; बल्कि उसने यह कहा कि जो चेतना सूर्य, चन्द्र, विद्युत, अग्नि और पृथ्वी में है, वही उसके अन्दर भी है। इस प्रकार उपकोशल की दृष्टि में मानो सब कुछ रूपान्तरित हो गया! जो अग्नि पहले केवल हवन करने की जड़ अग्नि मात्र थी, उसने एक नया रूप धारण कर लिया और वह ईश्वर हो गयी। पृथ्वी ने एक नया रूप धारण कर लिया; प्राण, सूर्य, चन्द्र, तारे, विद्युत्, सब कुछ रूपान्तरित हो गया और सब कुछ ब्रह्मभावापन्न हो गया। तब उनका वास्तविक स्वरूप ज्ञात हो गया।

वेदान्त का उद्देश्य ही है – सभी वस्तुओं में ईश्वर का दर्शन करना। वस्तु का आपात दृष्टि से जो रूप प्रतीत होता है, उसे न देखकर उनको उनके यथार्थ स्वरूप में जानना है। (८/२१-२)

७१. बुद्ध विषयक आख्यान

जन्म के समय बुद्ध इतने पवित्र थे कि जो कोई दूर से भी कभी उनका चेहरा देखता, वह तत्काल ही (याग-यज्ञों से युक्त) कर्मकाण्डी धर्म को छोड़कर संन्यासी बन जाता और मुक्त हो जाता। अत: देवताओं ने एक सभा की। वे बोले, ''हम बरबाद हो गये।'' क्योंकि अधिकांश देवता यज्ञों पर ही जीवन-धारण करते हैं। ये यज्ञ देवताओं को प्राप्त होते हैं और ये यज्ञादि चले गये। देवता लोग भूखों मर रहे थे और (इसका कारण) यह था कि उनकी शक्ति चली गयी थी।

अत: देवताओं ने कहा, ''जैसे भी हो, हमें इस आदमी

को दबाना होगा। यह व्यक्ति, हमारे जीवन की दृष्टि से, जरूरत से ज्यादा पवित्र है।''

देवतागण उनके पास आकर बोले, ''महाशय, हम आपसे कुछ माँगने आये हैं। हम एक महान यज्ञ करना चाहते हैं और हमें एक बड़ी विशाल अग्नि प्रज्वलित करनी है और हम पूरे विश्व में एक पवित्र स्थान ढूँढ़ रहे हैं, जिस पर हम अग्नि प्रज्वलित कर सकें; परन्तु वह हमें मिला नहीं; अब हमें वह मिल गया है। यदि आप लेट जायँ, तो हम आपके सीने पर वह विशाल अग्नि प्रज्वलित करेंगे।''

उन्होंने कहा, ''मंजूर है; करो।''

देवताओं ने बुद्ध के सीने पर विशाल अग्नि प्रज्वलित की। उन लोगों ने सोचा कि वे मर गये, परन्तु ऐसा हुआ नहीं। और तब वे फिर लौट गये और कहने लगे, ''हम बरबाद हो गये।''

सभी देवता मिलकर उन पर प्रहार करने लगे। परन्तु इससे कोई लाभ नहीं हुआ। वे इन्हें मार नहीं सके।

नीचे से आवाज आयी, ''क्यों व्यर्थ में यह सब प्रयास कर रहे हो?''

उन लोगों ने कहा, ''जो कोई भी आपकी ओर देखता है, पवित्र हो जाता है और बच जाता है। फिर कोई भी हमारी पूजा नहीं करता।''

उत्तर मिला, ''तो फिर तुम्हारा प्रयास व्यर्थ है, क्योंकि पवित्रता को कभी नष्ट नहीं किया जा सकता।''

यह कथा उनके शत्रुओं द्वारा रची गयी थी, तो भी इस पूरी कथा में बुद्ध पर एकमात्र यही दोषारोपण किया गया है कि वे पवित्रता के इतने महान प्रचारक थे। (CW, 3/525)

जैसे चींटी शक्कर और बालू के एक साथ मिले रहने पर भी, बालू को छोड़कर शक्कर ही खाती है, वैसे ही सन्त लोग इस संसार में सद्वस्तु सच्चिदानन्द भगवान का ही ग्रहण करते हैं और असद्वस्तु कामिनी-कांचन आदि को त्याग देते हैं।... विषयवासना, सन्तति तथा मान-सम्मान के लिए कामना रखकर ईश्वर-आराधना नहीं करनी चाहिए। जो केवल सच्चिदानन्द की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता है, उसे निश्चय ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।

– श्रीरामकृष्ण देव

आश्चर्य है ! आश्चर्य है !

अष्टावक्र-गीता

(अनुवाद : स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती, वृन्दावन)

अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः ।
एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडम्बितः ।।

– आश्चर्य है ! मैं तो शुद्ध शान्त, ज्ञानस्वरूप एवं प्रकृति से परे हूँ । अब तक अज्ञान ने ही मुझे भव-जाल में फँसा रखा था ।

सशरीरमहो विश्वं परित्यज्य मयाधुना ।
कुतश्चित्कौशलादेव परमात्मा विलोक्यते ।।

– आश्चर्य है ! आश्चर्य है ! मैं शरीर और संपूर्ण विश्व का त्याग कर किसी अनिर्वचनीय कौशल से वर्तमान क्षणों में ही परमात्मा का दर्शन कर रहा हूँ । दृश्य को बाधित करना ही कौशल है । स्वत: सिद्ध द्रष्टा का बोध ही उसका दर्शन है ।

अहो विकल्पितं विश्वमज्ञानान्मयि भासते ।
रूप्यं शुक्तौ फणी रज्जौ वारि सूर्यकरे तथा ।।

आश्चर्य है ! आश्चर्य है ! सीप में चाँदी, रस्सी में साँप और सूर्य की किरणों में जल की प्रतीति के सदृश मुझमें यह अज्ञानकल्पित विश्व की प्रतीति हो रही है ।

द्वैतमूलमहो दुःखं नान्यत्तस्यास्ति भेषजम् ।
दृश्यमेतन्मृषा सर्वमेकोऽहं चिद्रसोऽमलः ।।

– आश्चर्य है ! आश्चर्य है ! समस्त दुखों का कारण द्वैतभाव है । उसकी दूसरी कोई दवा नहीं है । बस ! ऐसा बोध ही औषधि है कि यह सम्पूर्ण दृश्य-संसार मिथ्या है और मैं अद्वितीय, शुद्ध एवं चिदानन्दस्वरूप हूँ ।

अहो मयि स्थितं विश्वं वस्तुतो न मयि स्थितम् ।
न बन्धनोऽस्ति मोक्षो वा भ्रान्तिः शान्ता निराश्रया ।।

– आश्चर्य है ! मुझमें सम्पूर्ण विश्व की प्रतीति होने पर भी, वस्तुत: वह मुझमें नहीं है । मुझे कभी बन्धन और मोक्ष नहीं हुआ । मुझ शुद्ध आत्मा के साथ आश्रयाश्रयीभाव सम्बन्ध न होने से आश्रयहीन होकर भ्रान्ति स्वयं शान्त हो गयी ।

अहो चिन्मात्रमेवाहमिन्द्रजालोपमं जगत् ।
अतो मम कथं कुत्र हेयोपादेयकल्पना ।।

आश्चर्य है ! आश्चर्य है ! मैं केवल चित्स्वरूप हूँ । यह जगत इन्द्रजाल के समान है । अत: अब मुझे क्यों किसमें त्याज्य और ग्रहण की कल्पना हो?

न जागर्ति न निद्राति नोन्मीलति न मीलति ।
अहो परदशा कापि वर्तते मुक्तचेतसः ।।

– मुक्तपुरुष की दशा विलक्षण होती है ! वह न सोता है, न जागता है, न आँखें खोलता है, न बन्द करता है ।

काशी के बनबाबा (४)

स्वामी अप्रमेयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

(प्रस्तुत निबन्ध का मूल बांगला से हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मिशन साधना कुटीर, ओंकारेश्वर के स्वामी उरुक्रमानन्द जी ने किया है।)

मुझे महाराज ने कहा था, ''पहले सेवाश्रम में ठाकुर-माँ-स्वामीजी के सेवाकार्य करने के पश्चात् यदि तुम्हें समय मिले, तब मेरी सेवा करने के लिए यहाँ आना। मेरे कारण उनकी सेवा की उपेक्षा मत करना।'' महाराज इस सेवा-प्रसंग में विभिन्न साधुओं के विषय में कहा करते, ''काशी में एक आशु महाराज थे, वे भी महापुरुष महाराज के शिष्य थे। वे सेवाश्रम की जमीन में बहुत अच्छी-अच्छी शाक-सब्जी लगाते थे। एक बार महापुरुष महाराज ने यह सब देखकर कहा था, ''आशु, तुम इसी तरह ठाकुर-माँ-स्वामीजी की सेवा करो। इसी से तुम्हारा सब कुछ होगा।'' आशु महाराज ने इस गुरुवाक्य का जीवनभर पालन किया।

सत्येन महाराज से आशु महाराज की एक घटना सुनी थी। काशी में प्रचण्ड गर्मी के होते हुए भी वे एक छाता सिर पर रखकर खेती के काम की देखरेख करते थे। विभिन्न प्रकार की विघ्न-बाधाओं से खेत की शाक-सब्जी की रक्षा करते थे, जिससे रोगी-नारायण की सेवा में त्रुटि न हो। वृद्धावस्था में भी उसी अवस्था में उन्हें खड़े देखकर जब कोई उनसे विश्राम लेने की बात कहता, तो वे धीरे-से मुस्कुरा देते थे, किन्तु सेवा को छोड़कर अपने आराम की बात कभी-भी नहीं सोचते थे। एक बार कुछ ब्रह्मचारियों ने देखा खेत में बहुत-सी ककड़ियाँ लगी थीं। उन लोगों ने आशु महाराज से कहा कि साधुओं की सेवा के लिए कुछ ककड़ियाँ दे दीजिये। उन्होंने कहा, ''नहीं, नहीं, ये ककड़ियाँ रोगी-नारायण की सेवा के लिए निर्धारित हैं। पहले उनकी सेवा होगी।'' ब्रह्मचारीगण भी छोड़ने वाले नहीं थे। उन्होंने उनसे कहा, ''महाराज, क्या साधुओं में नारायण वास नहीं करते।'' उन्होंने उत्तर दिया, ''हाँ, करते हैं, परन्तु ये चीजें रोगी-नारायण की सेवा के लिए ही हैं।'' इस प्रकार वे निष्ठापूर्वक सभी काम करते थे।

बनबाबा से मैंने और एक घटना सुनी थी, जो आजकल दुर्लभ होती है। पहले ही कहा गया है कि साधु-ब्रह्मचारी सेवाश्रम के प्रत्येक कार्य करते थे। एक दिन स्नान के पहले दोपहर के समय दो साधु नाली आदि साफ कर रहे थे। तब कोई मेहतर कार्यरत नहीं थे। किसी कारण से उन दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। बलवान साधु ने दुर्बल साधु पर प्रहार तक कर दिया। दुर्बल साधु मार खाकर चुपचाप चले गये। थोड़ी देर बाद जिन्होंने मारा था, वे उस अन्य साधु को चारों ओर खोजने लगे। बहुत खोजने पर उन्होंने देखा कि वे एक कमरे में बैठकर अकेले ही बीड़ी पी रहे हैं। उन्हें देखकर जिन्होंने मारा था, उनको गले लगाकर कहा, ''साले, अकेले ही बीड़ी पी रहा है।'' यह कहकर उनके हाथ से बीड़ी छीनकर स्वयं पीने लगे। उसके बाद दोनों ने मिलकर सफाई का काम पूरा किया और काम समाप्त कर स्नान करके साथ ही भोजन किया। यह सब देखकर महाराज कहा करते थे, ''देखो, पहले साधुओं का व्यवहार कितना सहज-सरल हुआ करता था। काम करते समय परस्पर मनमुटाव हो ही सकता है, किन्तु किसी तरह का कोई क्षोभ मन में न रखकर एक परिवार के समान स्वयं ही क्लेश को मिटाकर पुन: प्रभु की सेवा में संलग्न हो जाना चाहिए।'

एक दिन मेरा मन ठीक नहीं था, तब महाराज ने मुझसे पूछा, 'क्या हुआ गार्जियन, (स्नेह से वे मुझे गार्जियन कहकर बुलाते थे)। आज मुँह क्यों फूला हुआ है?'' मैंने कहा, ''आज कम उम्रवाले दो रोगी-नारायण का देहत्याग हुआ है। इसीलिए मन खराब हो गया है।'' उन्होंने कहा, 'एक कहानी सुनो। कैलास में शिवजी रहते हैं। वे तो आत्माराम हैं। सर्वदा समाधिस्थ रहते हैं और माँ पार्वती को सारे जगत को सम्भालना पड़ता है। एक दिन भोलेबाबा आत्मस्थ होकर बैठे थे। इसी समय देववैद्य अश्विनीकुमारद्वय आकर बाबा की समाधि भंग करके उनसे प्रार्थना करने लगे – ''हे प्रभु, संसार के कष्ट और दुख-महामारी और देखी नहीं जाती। कृपा करके आप इसके लिए कुछ उपाय कीजिए ।'' शिवजी ने इस प्रार्थना से प्रसन्न होकर समस्त रोगों का निदान कह डाला। देववैद्य को अत्यन्त खुश जाते हुए देखकर पार्वतीजी ने शिवजी से उनकी प्रसन्नता का कारण पूछा। बाबा ने भी वैद्यद्वय की समस्या की बात और फिर समस्या के निदान की बात भी पार्वती से कह डाली। तब माँ पार्वती ने कहा,

"ये आपने क्या किया, अब संसार में कोई मरेगा ही नहीं। सब अमर हो जाएँगे, फिर आपकी सृष्टि भी कैसे चलेगी? आप तो आँखें बन्द करके बैठे रहते हैं और मुझे ही संसार की सब झंझटें सम्भालनी पड़ती हैं।" तब आशुतोष ने मुस्कुराकर कहा, "देवि, तुम इसको लेकर चिन्ता मत करो। समस्त रोगों का निदान मैंने कह दिया है, यह बात सत्य है, परन्तु एक चीज मेरे हाथ में है। समय उपस्थित होने पर वैद्य की मति भ्रमित कर देना।" अत: यह सब लेकर बहुत चिन्ता मत करना। तुम्हारा काम है यथासामर्थ्य रोगी-नारायण की सेवा करना, उसके बाद सब कुछ ठाकुर की इच्छा से ही होता है।

एक अन्य दिन किसी प्रसंग में पुराने दिनों की बात कहने लगे। पहले कितना कुछ करते थे। नवदुर्गा तथा नवगौरी के दर्शन करते चण्डी पाठ समाप्त करके नारायण सेवा किया करते थे। विभिन्न समय में विभिन्न शिवमन्दिरों के दर्शन करने जाते थे। एक बार सुना था मणिकर्णिका घाट पर एक इन्द्रवज्रेश्वर नामक शिवलिंग है। वर्षा के समय उस शिवलिंग को पकड़कर यदि गंगा में डुबकी लगाई जाए तो मुक्ति हो जाती है। लगातार दो वर्ष चेष्टा की थी, किन्तु जब भी जाता था, तो गंगाजल का स्तर इतना बढ़ जाता कि शिवलिंग को खोजना ही कठिन हो जाता था। इसीलिए अगले वर्ष मैंने ऐसा संकल्प लिया कि इस बार शिवजी को पकड़कर स्नान अवश्य ही करूँगा। निर्दिष्ट दिन पर सुबह जाकर देखा, तो इस बार भी जल बहुत बढ़ा हुआ था। बाहर भी प्रचण्ड वर्षा और झंझावात चल रहा था। कहीं भी कोई व्यक्ति नहीं था। मैं भी ठाकुर का नाम लेकर प्रबल वेगवती गंगा के जल में एकाकी शिवलिंग खोजने लगा, परन्तु वह वहाँ मिल नहीं रहा था। दुख से रोना आ रहा था। इसी समय मन में एक स्पष्ट वाणी ध्वनित हुई, ये सब तो गृहस्थों के लिए है, त्यागियों के लिए नहीं है। लगातार तीन बार यही बात भीतर से सुनने के बाद मैं चुपचाप ऊपर उठ आया और मन में शान्ति छा गयी।

महाराज अपनी घटना कहकर मुझे और डॉक्टर आशीष (परवर्ती काल में स्वामी अमृतानन्द) को विभिन्न देव-देवियों के दर्शन करने के लिए प्रेरित करते थे। इतना ही नहीं, बल्कि अपनी डायरी खोलकर नवदुर्गा और नवगौरी के स्थान बतला देते थे। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के समय केदारघाट जाकर जप-ध्यान करने के लिए कहते थे।

डॉ. आशीष के लिए नारायण-सेवा की एक समस्या उपस्थित हुई थी। उनकी ओ.पी.डी. में इतने रोगी-नारायण आने लगे कि सुबह ८ बजे से लेकर दोपहर ४ बजे तक रोगी-नारायण को देखना पड़ता था। इसी समय अनेक लोगों ने डॉक्टर का स्वयं शरीर अस्वस्थ होने की आशंका देखकर समय और रोगियों की संख्या निर्धारित करने की बात कही थी। इस प्रसंग में डॉ. आशीष ने बनबाबा से पूछा कि उनके लिए ऐसी परिस्थिति में क्या करना उचित है। महाराज ने सब कुछ सुनकर कहा, "तुम्हें इससे कुछ कष्ट होता है, परन्तु नारायण की बात सोचकर एक बार विचार करो कि वे लोग कितनी दूर से, कितने कष्ट सहनकर ठाकुर के दरबार में आते हैं। खाली हाथ वापस चले जाने पर क्या ठाकुर हम पर सन्तुष्ट होंगे? भाई, मैं कहता हूँ, स्वयं को कितना भी कष्ट क्यों न हो, यथासाध्य प्रभु की सेवा किये जाओ। इसी से तुम्हारा मंगल होगा।" महाराज के इस वाक्य का स्मरण करके डॉ. आशीष (स्वामी अमृतानन्द) ने यथाशक्ति रोगी-नारायणों की सेवा की।

(क्रमश:)

भारत तभी जागेगा जब विशाल हृदयवाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ों भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता तथा मूर्खता के अगाध सागर में निरन्तर नीचे डूबते जा रहे हैं। मैंने अपने क्षुद्र जीवन में अनुभव कर लिया है कि उत्तम लक्ष्य, निष्कपटता और अनन्त प्रेम से विश्व-विजय की जा सकती है। ऐसे गुणों से सम्पन्न एक भी मनुष्य करोड़ों पाखण्डी एवं निर्दयी मनुष्यों की दुर्बुद्धि को नष्ट कर सकता है।

– स्वामी विवेकानन्द
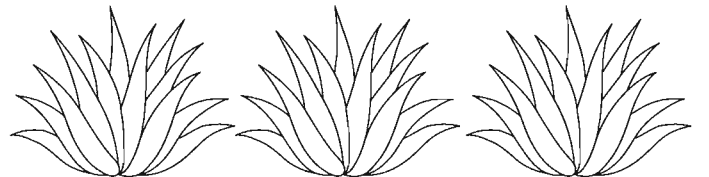
स्वामी विवेकानन्द का वेदान्त को योगदान

भालचन्द्र सेठिया, कानपुर

यदि महर्षि वेदव्यास इस धरा पर अवतीर्ण नहीं हुए होते, तो श्रुतियाँ हम तक न पहुँचतीं और मानवता सनातन वैदिकविहीन होने के कारण बर्बर और जंगली ही बनी रहती, जैसा संसार के अधिकांश भागों में सुदीर्घ काल तक चलता रहा।

इसी प्रकार यदि स्वामी विवेकानन्द संसार में जन्म न लेते, तो भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंस के जीवन की अलौकिक लीलाओं, उनकी अमृतमयी वाणी, शास्त्र और वेदान्त के मूर्तरूप उनकी दृष्टि और संकल्प से सारा संसार अपरिचित रह जाता। १२ जनवरी १८६३ से ४ जुलाई, १९०२ की अल्पावधि में स्वामीजी ने विश्व को न केवल अपने गुरु की अद्भुत अद्वितीय अपरोक्षानुभूति से उत्पन्न शाश्वत सत्य को उद्घाटित किया, वरन् भारत के मृतप्राय गौरवशाली अतीत से संसार को परिचित कराया। इसी के साथ भारत के खोये हुए आत्मविश्वास को पुन: जागृत कर देश का सर्वतोमुखी पुनर्जागरण किया। उन्होंने भारत के प्रति विश्व की दृष्टि बदल दी और भारत की स्वयं अपने प्रति दृष्टि बदल दी।

स्वामीजी अतुलनीय आत्मविश्वास से परिपूर्ण थे। इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब कोई कुलीन हिन्दू विधर्मी के घर कुछ भी नहीं खा-पी सकता था, उस समय वे अमेरिका और यूरोप के अन्यान्य देशों में जाकर वहाँ के लोगों से घुल-मिलकर वेदान्त का प्रचार-प्रसार करते रहे। वे सन् १८९३ के सितम्बर माह में होनेवाली विश्वधर्म संसद में बिना निमन्त्रण, बिना किसी प्रामाणिक संस्था के प्रतिनिधि होकर, बिना संसाधनों के जाकर अपने आत्मविश्वास के बल पर अनेकानेक कष्टों को सहते हुए, वहाँ के शीर्षस्थ प्रबुद्ध जनों को प्रभावित करके उस विश्व-संसद के मंच में प्रवेश पा सके। संसार के सभी धर्मावलम्बी, दिग्गज धर्माचार्य स्वामीजी की अनूठी वेशभूषा, भाषाओं पर पकड़, अद्वितीय भाषण शैली से ऐसे सम्मोहित हुए कि छ: दिन तक उनके व्याख्यानों से वेदान्त के शाश्वत सिद्धान्तों को न केवल सुनते रहे, अपितु उनसे प्रभावित भी हुए।

स्वामीजी अथाह ज्ञान के विश्वकोष थे। वे भारतीय धर्मशास्त्रों, उनके व्याख्याकार आचार्यों के ज्ञाता थे। उन्होंने पाश्चात्य दर्शन, संसार के विभिन्न धर्मों, मतों के शास्त्रीय ग्रन्थों, उनके साहित्य, इतिहास, विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन एवं दार्शनिकों के जीवन एवं कृतित्वों का भी गम्भीर अध्ययन किया था। इसकी झलक उनके भाषणों, लेखों, पत्रों और वार्तालापों में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

ब्रह्मचर्य, खेलकूद, व्यायाम, तैराकी द्वारा सुगठित, सशक्त, ओजस्वी, सुन्दर शरीर वाले स्कूल और कॉलेज की पढ़ाई में अग्रणी, नरेन्द्रनाथ दत्त ने बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। साथ ही पाश्चात्य इतिहास, हेगेल, कांट, डेकार्टे, शापेनहावर आदि अनेक दार्शनिकों तथा डार्विन, लैमार्क, कार्लायल और मार्क्स आदि का भी गहन अध्ययन किया था। इस विविधतापूर्ण विशद अध्ययन करने के कारण वे अत्यन्त शंकालु हो गये थे। इसलिए जो भी विद्वान साधु-संत मिलते, उससे एक ही प्रश्न पूछ कर उसे निरुत्तर कर देते थे – 'क्या आपने ईश्वर को देखा है?'

इसी काल में राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर और विशेष रूप से केशवचन्द्र सेन के ब्रह्मसमाज का बंगाल में जोरों से प्रचार हो रहा था। युवा नरेन्द्र इस आन्दोलन से प्रभावित हो गये थे। वे पूर्ण रूप से नास्तिक, सनातन धर्म के कर्मकाण्डों के आलोचक और एक प्रखर ब्राह्मसमाजी बन गये थे।

इस प्रकार की शिक्षा के पश्चात् भगवान श्रीरामकृष्ण देव के सान्निध्य से नरेन्द्र के जीवन में एक अदभुत मोड़ आया। १८८१ से १८८६ तक के अल्प कालखण्ड में नरेन्द्र पूर्णरूप से आस्थावान समर्पित शिष्य के रूप में समस्त वैदिक शास्त्रों, विभिन्न आचार्यों के मतों और व्याख्याओं में पारंगत होने के साथ-साथ अवतारवरिष्ठ श्रीरामकृष्ण की लीलाओं और वचनामृत का पान करते हुए अपनी सैद्धान्तिक शिक्षा पूर्ण कर चुके थे।

किन्तु अभी उनकी शिक्षा पूर्ण नहीं हुई थी, इसलिए

अपने पूज्य गुरुदेव के महाप्रयाण के पश्चात् लगभग तीन वर्ष तक वे सम्पूर्ण देश में, कश्मीर से कन्याकुमारी तक, कच्छ से कामरूप (कामाख्या) तक भ्रमण करते रहे और देश की हृदयविदारक दुर्दशा, निर्धनता, अशिक्षा, लाचारी, बीमारी से ग्रस्त असंख्य देशवासियों को देखकर उनका हृदय चीत्कार करने लगा और वे उन लोगों को इस बीभत्स स्थिति से बाहर निकालने के लिये उपाय सोचने लगे। इसलिए उन्होंने संसार के सबसे सम्पन्न देश अमेरिका जाने को सोचा। अमेरिका जाने से पूर्व उन्होंने अपना नाम विवेकानन्द रख लिया तथा अपने कुछ प्रशंसकों तथा महाराजा खेतड़ी और महाराजा मैसूर आदि से आर्थिक सहायता प्राप्त कर अमेरिका प्रस्थान किया।

अब स्वामी विवेकानन्द का विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों और उपलब्धियों से परिपूर्ण कालखण्ड प्रारम्भ हुआ। सन् १८९३ में शिकागो की धर्म-संसद में अपने व्याख्यानों की सफलता से वे सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत में अपनी विद्वत्ता तथा सुन्दर भाषण शैली के लिए सुविख्यात हो गये। भारतीय समाचार पत्रों में भी उनकी सफलता प्रसारित होती रही। वे कई वर्षों तक अमेरिका के विभिन्न नगरों में घूम-घूमकर वेदान्त का प्रचार करते रहे। तीन यात्राएँ यूरोप के देशों में भी कीं। वेदान्त से विश्व को परिचित कराकर वे स्वदेश वापस आ गये।

४ जुलाई १९०२ को ब्रह्मलीन होने से पूर्व स्वामीजी ने स्वदेश में दो बड़े अद्भुत और कालजयी कार्य किये। पहला कार्य था अपने मात्र १५ साथियों के साथ अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण परमहंस देव के 'जितने मत उतने पथ' के सिद्धान्त को पूरे विश्व में प्रसार के लिये १८९७ में 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। इस संस्था की आज संसार के अनेक देशों में बहुत शाखाएँ हैं। यहाँ के सेवाभाव से ओतप्रोत विद्वान संन्यासी पूरे विश्व में स्वामी विवेकानन्द के 'सर्वधर्मसमन्वय' और 'शिवभाव से जीवसेवा' के सिद्धान्त का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं।

स्वामीजी का दूसरा महान कार्य था वेदान्त की अभिनव व्याख्या के आधार पर देश का पुनर्जागरण। वेदान्त तो सनातन है। उसकी विभिन्न प्रकार की व्याख्याएँ अनेक आचार्यों के द्वारा की गयी हैं। किन्तु वेदान्त के गूढ़ ज्ञान-प्रदीप को पर्वतों और जंगलों की गुफाओं में बैठे साधकों, बड़े-बड़े विद्वानों और आचार्यों के पास से लेकर सामान्य जन-जीवन को कैसे प्रकाशित किया जा सकता है, यह स्वामीजी ने पहली बार करके दिखाया। वेदान्त को आधुनिक मानव जीवन में व्यावहारिक बनाने के लिए स्वामीजी ने जो साहसपूर्ण व्याख्या की, वह अद्वितीय है।

उन्होंने कहा कि प्राचीन धर्म कहता है कि जो ईश्वर पर विश्वास नहीं करता वह नास्तिक है, किन्तु वर्तमान धर्म कहता है, जो स्वयं पर विश्वास नहीं करता, वह नास्तिक है।

उन्होंने नवयुवकों को लोहे के पुट्ठे और इस्पात के स्नायु वाला शरीर बनाने तथा फुटबाल खेलने के लिए कहा, जिससे गीता के उपदेशों को वे शीघ्र समझ सकें ।

कितने साहस की बात थी, जब उन्होंने देशवासियों से कहा कि तुम आगामी पचास वर्षों के लिए अन्य सभी देवी-देवताओं को भूल जाओ और केवल देश के असंख्य दरिद्र, भूखे, नंगे, अशिक्षित लोगों को शिक्षा, भोजन, दवा आदि देकर उनकी सेवा करो। यही शास्त्रानुकूल है।

स्वामीजी ने देश के विद्वान मनीषियों को समझाया – ज्ञान, निष्काम कर्म और भक्ति के मार्ग भिन्न होते हुए भी एक ही लक्ष्य पर पहुँचते हैं। इसी प्रकार वेदान्त की शंकर, रामानुज, मध्व आदि आचार्यों की व्याख्याओं का भी उन्होंने समन्वय प्रस्तुत किया। द्वैत प्रथम सोपान है, विशिष्टाद्वैत दूसरा सोपान है और अन्तिम सोपान तो एक ही है – अद्वैत दर्शन।

संसार के लगभग सभी मत, सम्प्रदाय और धर्म अपने-अपने दर्शन, कर्मकाण्ड और अपनी-अपनी पौराणिक कथाओं को ही उचित एवं सत्य मानकर अभी तक ऐसा विश्वास करते आये हैं, कि सबको केवल उन्हीं को मानना चाहिए और शेष या तो स्वयं नष्ट हो जायेंगे या उन्हें नष्ट करना ही उचित है। स्वामीजी ने वेदान्त के अनुसार स्पष्ट किया कि ये सब मत और सम्प्रदाय देश-काल और परिस्थिति के अनुसार आवश्यक हैं। उन्हें परस्पर प्रेम और सहयोग करते हुए आगे बढ़ना होगा। अपने-अपने रास्ते से आगे बढ़ने पर पता चल जायेगा कि वे सब एक ही सत्य पर पहुँचते हैं, जो सबका अन्तिम लक्ष्य है। यही वेदान्त का अद्वैत दर्शन है, जो विश्वदर्शन का सार और विश्वधर्म का स्वरूप है। इस प्रकार की व्याख्या स्वामीजी की अपूर्व देन है।

स्वामी विवेकानन्द के द्वारा भारतीय सनातन वैदिक दर्शन और संस्कृति में किया गया अवदान अवर्णनीय और अतुलनीय है। ○○○

भक्तिमार्ग की विशेषता

डॉ. राजीव मुखर्जी

अतिथि व्याख्याता, शा. नी. स्नातकोत्तर महा. वि. खण्डवा

भारतीय दर्शन में मुक्ति (दुखनिवृत्ति एवं पराशान्ति) की प्राप्ति के लिये अनेक मार्ग बतलाए गए हैं, जैसे – कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि।

'ज्ञानयोग' का अर्थ है – तत्त्व ज्ञान के द्वारा अर्थात् आत्मा, परामात्मा एवं जगत् के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान द्वारा मुक्ति की प्राप्ति।

'कर्ममार्ग' के अन्तर्गत मुख्यत: वेदों द्वारा बताए गए यज्ञ-हवन आदि कर्मकाण्डों के द्वारा अभीष्ट-प्राप्ति की सम्भावना बतलाई गई है। भारतीय मीमांसा दर्शन कर्मकाण्डों का समर्थन करता है। विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि कर्म का क्षेत्र विस्तृत है तथा कर्म के साथ फल अनिवार्य है। फल की प्राप्ति से अहं की पुष्टि होती है, इसलिए कुछ दर्शनों में कर्म को अविद्यात्मक भी बताया गया है। ज्ञानमार्ग सर्वसाधारण हेतु सुलभ नहीं है। क्योंकि ज्ञान के क्षेत्र के अनेक पहलू हैं। सामान्य व्यक्ति इन सारे पहलुओं को सुलझाने की क्षमता नहीं रखता, इसलिए ज्ञानमार्ग केवल कुछ विशिष्ट लोगों के लिए ही उपयुक्त है।

यदि हम उपरोक्त दृष्टिकोणों से हटकर देखें, तो यह स्पष्ट है कि साधारण व्यक्ति हेतु सबसे सहज 'भक्ति मार्ग' ही है, क्योंकि इसके लिए ज्ञान के दुरूह मार्ग और कर्म के विस्तृत मार्ग में उलझने की आवश्यकता नहीं है, वरन् असीम सत्ता के प्रति समर्पण कर सारे जंजालों से मुक्त हो जाना है। भक्तिमार्ग की विशिष्टता यह है कि वह हमारे महान दिव्य लक्ष्य की प्राप्ति का सबसे सहज एवं स्वाभाविक मार्ग है।

श्रद्धावान एवं भगवत्परायण, भगवत्-शरणागत व्यक्ति भक्तिमार्ग का योग्य पथिक होता है। भक्तियोग में भगवत्-समर्पण की प्रधानता होती है, जिसमें भक्त का सारा अहंकार विगलित हो जाता है। भक्ति में अनन्य निष्ठा के साथ भगवत् सेवा की जाती है। भज् धातु से निष्पन्न होने के कारण 'भक्ति' का अर्थ है 'सेवा'।

''सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।

हृषीकेन हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।।''

अर्थात् सभी प्रकार की फल-कामना से रहित होकर, निष्काम भाव से सभी इन्द्रियों से पूर्ण तत्परता के साथ भगवान की सेवा करने का नाम भक्ति है। भक्त प्रह्लाद प्रार्थना करते हैं –

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।

त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयानापसर्पतु।। (विष्णुपुराण १/२०/१९)

अर्थात् हे ईश्वर ! जैसी अज्ञानियों की इन्द्रिय-भोग के नाशवान पदार्थों पर प्रबल आसक्ति होती है, वैसी ही मेरी आप में भक्ति हो और आपका स्मरण मेरे हृदय से कभी दूर न हो।

मानव में विद्यमान प्रेम या अनुराग को भोग-वासना या संसार की ओर से विमुख कर, ईश्वर की ओर उन्मुख करने और अनिर्वचनीय मधुर प्रेम का आस्वादन प्राप्त करने की साधना भक्तियोग है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में – ''भक्ति किसी का संहार नहीं करती, वरन् हमें यह सिखाती है कि हमें जो-जो शक्तियाँ दी गई हैं, उनमें से कोई भी निरर्थक नहीं है, बल्कि उन्हीं में से होकर हमारी मुक्ति का स्वाभाविक मार्ग है। भक्ति न तो किसी वस्तु का निषेध करती है और न वह हमें प्रकृति के विरुद्ध ही चलाती है। भक्ति तो केवल हमारी प्रकृति को ऊँचा उठाती है और उसे शक्तिशाली प्रेरणा देती है। इन्द्रिय-विषयों पर हमारी स्वाभाविक प्रीति हुआ करती है, ऐसी प्रीति किये बिना हम रह ही नहीं सकते, क्योंकि ये विषय, ये पदार्थ हमें बिल्कुल सत्य प्रतीत होते हैं। साधारणत: हमें इनमें उच्चतर पदार्थों में कोई यथार्थता ही नहीं दिखाई देती, पर जब मनुष्य इन्द्रियों के परे – इन्द्रियों के संसार के उस पार किसी यथार्थ वस्तु को देख पाता है, तब वांछनीय यह है कि उस प्रीति को, उस आसक्ति को बनाये तो रखे, पर उसे सांसारिक विषय के पदार्थों से हटाकर उस इन्द्रियातीत तत्त्व को परमेश्वर में लगा दे। जब इन्द्रियों के भोग्य पदार्थों का उत्कट प्रेम ईश्वर (भगवान) में लग जाता है, तब उसका नाम 'भक्तियोग' हो जाता है।''

वस्तुत: प्रेम तो मानव हृदय की नैसर्गिक तथा जन्मजात प्रवृत्ति या भाव है। जब यह भाव सांसारिक व्यक्ति या वस्तु के प्रति होता है, तो वह वासना के रूप में होता है तथा जीव के बन्धन एवं दुख का कारण बनता है। जब यही भाव ईश्वर के प्रति होता है, तो वह प्रेम 'भक्ति' कहलाता है। यह साधना, योग का रूप लेती है और जीव को

समस्त दुख, शोक व भय से विमुक्त कर देती है।

प्रेम भाव के सागर में निमग्न भक्तयोगी सदा अपने प्रभु का दर्शन प्राप्त करता है, प्रेमी भक्त के रोम-रोम में ईश्वर समा जाता है। मन, वचन और कर्म की सभी अभिव्यक्ति बौद्धिक, भावात्मक एवं क्रियात्मक आदि में एकमात्र वह ईश्वर ही प्रस्फुटित होता है। अनन्यता की दशा, प्रेम की पराकाष्ठा को इंगित करती है। यह भक्तयोगी की सिद्धावस्था में ही सम्भव है। **'तदर्पिताखिलाचारिता, तद्विस्मरणे परम व्याकुलता''** भक्त इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए सब प्रकार से प्रयत्नशील रहता है और उससे तनिक भी बाहर आना, जल से विलग हुई मछली की भाँति उसे विकल, विह्वल और अधीर बना देता है।

श्रीमद्भागवत में इस दिव्य अलौकिक प्रेम-दशा का सुन्दर चित्रण किया गया है —

क्वचिद्रुदन्त्यच्युत चिन्त्या क्वचित्
हसन्ति निन्दन्ति वदन्त्यलौकिकः।
नृत्यन्ति गायन्त्युशीलयन्त्यजं
भवन्ति तूष्णीं परमेत्य निर्वृताः।।

हमारे भारत देश में अनेक भक्त सन्त एवं योगी हुए हैं जो उपरोक्त वर्णित दिव्यानुभूति को प्राप्त करने में सफल हुए हैं। भक्तयोगियों के अद्भुत चारित्रिक रहस्य को समझने के लिये हमें अतीत के इतिहास पर सर्वप्रथम ध्यान केन्द्रित करना होगा। हमारे भारत देश में ऋषि, कवि, दार्शनिक, साहित्य-लेखक, वैज्ञानिक, ज्योतिषी, गणितज्ञ, चिकित्सा और आयुर्वेद के सृष्टिकर्ता रहे हैं। हमारे देश में जनक, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ आदि गृहस्थयोगियों ने जन्म लेकर समाज को सही दिशा दी है। बुद्धदेव, ऋषभदेव, शंकराचार्य, गुरुनानक, कबीरदास, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु, रामकृष्ण परमहंस, विजयकृष्ण गोस्वामी, स्वामी विवेकानन्द आदि अनेक साधु समाज के परम मंगल हेतु अपनी सुख-शान्ति और समाधि तथा अपना सम्पूर्ण जीवन लोक-कल्याण में समर्पित कर गये हैं।

आज भी कुछ लोग उन्हीं के पदचिन्हों पर चलने का प्रयास करते हुए देश की आध्यात्मिक ग्लानि और अनैतिकता को दूर करने के लिए साधना कर रहे हैं। ये अपने त्याग-भक्ति-सेवामय जीवन से धर्म-पिपासुओं के अन्धकारमय जीवन को प्रेम, पवित्रता और सत्यधर्म की ज्योति से प्रकाशित कर रहे हैं। कोई भूख-प्यास और व्याधि से पीड़ितों की सहायता के लिए लाखों रुपयों का संग्रह एवं व्यय कर रहे हैं। कोई शोकार्त को सान्त्वना, अज्ञानी को ज्ञान, निराश को आशा की किरण देकर नित्य इस देश व समाज को दुर्दशा से मुक्त करने के लिये कठोर परिश्रम भी कर रहे हैं।

भारतीय सन्तों के षडैश्वर्य, महानता एवं आध्यात्मिक शौर्य का थोड़ा अंश प्राप्त कर यूरोप और अमेरिका आश्चर्यचकित हैं, जिनकी दो-चार बातों की प्रतिध्वनि इमर्सन, कार्लाइल आदि पाश्चात्य दार्शनिकों के पास सुनकर लोग उनकी उपासना का प्रयास कर रहे हैं। ऐसे प्राचीन महात्माओं की परम्परा मानव के जीवन में शान्ति और परम लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक है।

वस्तुतः भक्तियोग ज्ञान, प्रेम और कर्म इन तीनों की एक साथ उन्नति का परिणाम है। बंगाल के भक्त-सद्गुरु विजयकृष्ण गोस्वामी की दृष्टि में परमेश्वर रस स्वरूप हैं। जिस प्रकार रस पौधे के भीतर प्रवेश कर एक साथ उसके मूल, तना, शाखा-प्रशाखा और पत्तों में सर्वत्र समान रूप से संजीवनी-शक्ति का संचार करता है, उसी प्रकार मानवात्मा में परमात्मा का आविर्भाव होने पर उनकी सब भावनाएँ एक साथ परिवर्द्धित होती हैं। आंशिक उन्नति इसके विपरीत है। ईश्वर पूर्ण हैं। पूर्ण परमेश्वर के हृदय में अवतीर्ण होने पर भक्त में अपूर्णता नहीं रहती, वह पूर्ण हो जाता है।

वास्तव में मनुष्य कर्मशील प्राणी है। वह कर्म करता ही है। केवल नौकरी करना अथवा समाज में रहकर गृहस्थ जीवन का पालन करना ही कर्म नहीं है। जो बाह्य कर्म न कर विषयों का चिन्तन करता है, वह भी कर्म है। जैसे कोई प्रवचन देता है, कोई पुस्तक लिखता है, कोई कृषि-कार्य करता है, कोई न्यायाधीश है, कोई स्वदेश की रक्षा के लिये युद्ध करता है, कोई निर्जन स्थान में केवल ध्यान-साधना करता है और दूसरों को अपने धर्म-जीवन से प्राप्त सत्य की शिक्षा देता है। ये सभी कार्य ईश्वर-समर्पण की भावना से भक्ति बन जाते हैं।

भक्त समाज के लिये कल्याणकारी होते हैं। क्योंकि यदि समाज के व्यक्ति सम्यक् दृष्टिसम्पन्न भक्त होंगे, तो सारे समाज का कल्याण स्वतः ही होगा। भक्त में समस्त सद्गुण विद्यमान रहते हैं, क्योंकि वह सदा सर्वसद्गुण-सम्पन्न भगवान का चिन्तन-मनन-निदिध्यासन करता रहता है। एक सच्चा भक्त प्राणिमात्र में अपने इष्ट को देखकर

उनसे प्रेम करता है। भक्त के व्यक्तित्व एवं चरित्र से प्रभावित होकर समाज के लोग उनके सान्निध्य में भक्तिपथ पर अग्रसर होते हैं।

भक्तयोगियों के संयमित, ईश्वराश्रित पावन जीवन का प्रभाव उनके अनुयाइयों पर पड़ता है, जिससे वे अपने जीवन में नैतिक कर्म और नैतिक मूल्यों को अपनाकर भगवद्भक्ति की ओर बढ़ते हैं। भक्तिमार्ग से समाज में आन्तरिक सुविचारों का गुणात्मक विकास होता है, एकाग्रता एवं आत्मविश्वास में सहजता से वृद्धि होती है।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक-आविष्कारों, भौतिकवादी और भोगवादी प्रवृत्ति तथा प्रौद्योगिकी के विकास के फलस्वरूप विभिन्न समस्याएँ जैसे – तनाव, कुंठा, विषमताएँ, हिंसा, द्वेष एवं स्वार्थपरता निरन्तर बढ़ रही हैं, ऐसी स्थिति में भक्तिमार्ग मानव में समता, एकता, प्रेम, बन्धुत्व एवं सद्भावना का विकास कर मानसिक शान्ति और आनन्द प्रदान करने में सक्षम है।

वस्तुत; कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं राजयोग, इन तीनों के द्वारा शाश्वत आनन्द की दुर्लभ अनुभूति प्राप्त होती है, किन्तु विश्लेषण करने पर यह देखा जाता है कि कर्म, ज्ञान एवं राजयोग का मूल आधार भक्ति है।

गीता (११/५४-५५) में भक्ति की महत्ता का उल्लेख करते हुए भगवान श्री कृष्ण कहते हैं -

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप।।
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव।।

अर्थ – हे अर्जुन ! भक्त केवल अनन्य भक्ति द्वारा इस प्रकार मुझे स्वरूपतः ज्ञात कर सकते हैं, साक्षात् दर्शन कर सकते हैं एवं मुझमें प्रविष्ट हो सकते हैं। जो व्यक्ति मेरा ही कर्म समझकर सभी कर्मों को करता है, मैं ही जिसकी एकमात्र गति हूँ, ऐसा समझकर जो सब प्रकार से मेरी उपासना करता है, जो आसक्तिरहित होकर किसी भी प्राणी से शुत्रता नहीं करता है, वह मुझको ही प्राप्त करता है।

पातञ्जल योगदर्शन में ईश्वर के प्रति सर्वस्व समर्पण को ईश्वरप्रणिधान कहा गया है। इससे धारणा-ध्यान-समाधि अर्थात् राजयोग की लक्ष्य की प्राप्ति सरलतापूर्वक सम्भव है। अद्वैत वेदान्त के आचार्य शंकर, जो ज्ञानयोगी हैं, वे भी मोक्षप्राप्ति के उपकरण के रूप में 'भक्ति' को स्वीकार करते हैं। शंकराचार्यजी ने अनेक ऐसे भावपूर्ण एवं रसमय स्तोत्रों की रचना की हैं, जो भक्ति भावना से परिपूर्ण हैं, जैसे - सौंदर्य-लहरी, आनन्द-लहरी आदि।

श्रीमद्भागवत (३/२९/१४) में कहा गया है -

स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः।
येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते।।

– यह आत्यन्तिक भक्तियोग ही सर्वश्रेष्ठ है, जिससे पुरुष तीनों गुणों को पाकर मेरा ही रूप हो जाता है।

विश्लेषण करने पर हम देखते हैं कि सैद्धांतिक एवं ऐतिहासिक दोनों दृष्टिकोणों से भक्तियोग का प्रभाव समाज व्यवस्था एवं आध्यात्मिक भावधारा पर है। यह भक्तियोग विश्वमानवता के लिये एक अद्भुत अमूल्य निधि है।

गीता (७/३) में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।।

– हजारों मनुष्यों में कोई मुझे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, उन यत्नशील योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण होकर मुझे यथार्थ रूप से जानता है।

सामान्य व्यक्ति के लिए उच्च सैद्धान्तिक विचारधारा की स्वयं खोज कर उसके अनुरूप आचरण करना सदा सम्भव नहीं हो पाता। इसीलिये भक्तयोगी महात्माओं ने जन-मानस पर जिस भक्ति-भावधारा का प्रसार किया, उसकी उपेक्षा न करके उसके अन्तर्निहित सिद्धान्तों का जीवन में आचरण करना चाहिये।

यदि कोई व्यक्ति अपने प्रयत्न या गवेषणा द्वारा आज युक्लिड के ज्यॉमिति के सूत्रों पर पुनः आविष्कार करना चाहे, तब हजारों वर्षों में भी वह सफल होगा कि नहीं, इसमें संदेह है। पर ऐसे कठिन सूत्रों को विद्यालय में छात्र शिक्षकों की सहायता से थोड़े ही दिनों में सीख जाते हैं। उसी प्रकार संसार के विविध क्लेश और बाधाओं के बीच में भी, हम भक्तयोगियों की आध्यात्मिक अनुभूति और उपदेशों की सहायता से अल्पकाल में ही सांसारिक दुखों से मुक्त होकर आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। यह भक्तिमार्ग का महान वैशिष्ट्य है। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची -

१. स्वामी विवेकानन्द – 'भक्तियोग' पृ. ४, 'प्रेमयोग' पृ. २ **२.** स्वामी अमलानंद – 'श्रीविजयकृष्ण कथामृत', **मूल ग्रंथ** – गीता, श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, नारद भक्तिसूत्र **सहायक ग्रंथ** – ब्रह्मचारी कुलदानन्द – 'श्री श्री सदगुरु संग' (पाँच खंडों में)

स्वयं को ऐसा गढ़ो

बेलूड़ मठ में संन्यास होने के बाद नवीन संन्यासी संघाध्यक्ष महाराज से उपदेश लेने जाते हैं। उस समय स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज रामकृष्ण संघ के दशम संघाध्यक्ष थे। उन्होंने नवीन संन्यासियों को सम्बोधित करते हुए कहा, 'हमारा आदर्श है – आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च अर्थात स्वयं की मुक्ति और जगत का कल्याण।' अत: हमें अपने इष्टदेव को केन्द्र बनाकर, इष्ट-चिन्तन के माध्यम से अपनी मुक्ति तथा जगत का कल्याण – इन दोनों का अभ्यास करना होगा। अपने इष्टदेव की सेवा के द्वारा जीवन-गठन ही हमारा लक्ष्य है। ठाकुरजी को केन्द्र बनाकर जीवन गठित हो, इसी प्रयास की आवश्यकता है। एक घटना बताता हूँ, सुनो – 'एक आश्रम में अनेक संन्यासी-ब्रह्मचारी रहते थे। सभी सुबह जप-ध्यान करने के बाद मन्दिर में जाते और साष्टांग प्रणाम करते। इसके बाद वे आश्रम के अध्यक्ष के पास जाते और वहाँ विभिन्न विषयों पर चर्चा करते। एक दिन वर्षा हो रही थी और सभी प्रणाम करने जा रहे थे। सबने देखा कि वर्षा के झकोरों से ठाकुरजी का सिंहासन गीला हो गया है। एक साधु ने प्रणाम करने के बाद इसे देखा और अध्यक्ष से शिकायत की, ''आपने कैसा पुजारी रखा है ! उसने खिड़कियाँ बन्द नहीं कीं। वर्षा के कारण ठाकुरजी का बिस्तर भीग गया है।'' अध्यक्ष स्वामी ने आश्चर्यपूर्वक कहा, ''ऐसा हुआ ! तुम लोगों में से किसी ने भी खिड़कियाँ बन्द नहीं कीं। अच्छा तुमने तो बन्द कर दीं न?'' शिकायत करने वाले साधु ने कहा, ''आपने जब एक व्यक्ति को इस कार्य में नियुक्त किया है, तो मैं क्यों बन्द करने जाऊँगा?'' तब अध्यक्ष स्वामी ने कहा, ''देखो, यह बात ठीक है कि तुम सब लोगों का कार्य बँटा हुआ है, परन्तु बिस्तर तो तुम्हारे इष्टदेव का भीगा है, जिन्हें केन्द्र बनाकर तुम अपना जीवन गढ़ रहे हो ! वे तो केवल चित्र या प्रतिमा मात्र नहीं, वरन् तुम्हारे अन्तर्यामी इष्टदेवता हैं। उनके प्रति तुम्हारी कितनी प्रेम-भक्ति है, यह तुम्हारी बातों से ही समझ में आ जाता है।''

इस घटना को बताने के बाद स्वामी वीरेश्वरानन्द जी बोले, ''स्वयं को इस प्रकार गढ़ो, जिससे अपने जीवन में इष्ट के प्रति प्रेम-भक्ति प्राप्त हो सके।'' ○○○

राष्ट्रीय युवा दिवस मनाया गया

दिल्ली, रामकृष्ण मिशन ने स्कूल के बच्चों के लिए एक लिखित प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया, जिसमें ८५,००० बच्चों ने भाग लिया।

मदुरै, रामकृष्ण मठ ने तमिलनाडू के १३३ शैक्षणिक संस्थानों में निबन्ध प्रतियोगिता कराई, जिसमें १६,८०० छात्रों ने भाग लिया। १२ जनवरी, २०१६ के विशेष कार्यक्रम में मेघालय और मणिपुर के राज्यपाल श्री वी. सन्मुगनाथन ने भाग लिया।

नागपुर, रामकृष्ण मठ ने नागपुर के १५० विद्यालयों के लिये सांस्कृतिक प्रतियोगिता का आयोजन किया गया, जिसमें ११,६९६ छात्रों ने भाग लिया।

राजकोट, रामकृष्ण मठ द्वारा आयोजित सांस्कृतिक प्रतियोगिता में १५० विद्यालयों के ४८०० बच्चों ने भाग लिया।

वडोदरा, रामकृष्ण मिशन ने लिखित प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता का आयोजन किया, जिसमें गुजरात के ११११९ विद्यालयों के १,०१,४०६ छात्रों ने भाग लिया।

विशाखापत्तनम्, रामकृष्ण मिशन ने १२ जनवरी को आन्ध्रा विश्वविद्यालय, विशाखापतनम् में युवा महोत्सव का आयोजन किया, जिसमें ३००० युवकों ने भाग लिया और सभा को आन्ध्रप्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री चन्द्रबाबू नायडू ने सम्बोधित किया।

रायपुर, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम और संस्कृति विभाग, छत्तीसगढ़ शासन के संयुक्त तत्त्वावधान में १२ एवं १३ जनवरी, २०१६ को स्वामी विवेकानन्द की जयन्ती के उपलक्ष्य में दो दिवसीय व्याख्यानमाला का आयोजन आश्रम के सत्संग भवन में शाम ६ से ८ बजे तक किया गया, जिसकी अध्यक्षता आश्रम के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने की। १२ जनवरी के वक्ता गाँधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली के अध्यक्ष श्री कुमार प्रशान्त जी ने 'विवेकानन्द अकिंचन का दौर' नामक विषय पर और मध्यप्रदेश शासन, संस्कृति विभाग के प्रमुख सचिव श्री मनोज कुमार श्रीवास्तव जी ने 'शक्ति की शास्त्रीय संकल्पना' पर व्याख्यान दिया।

१३ जनवरी के वक्ता थे छत्तीसगढ़ राज्य विद्युत मंडल के अध्यक्ष श्री शिवराज सिंह जी ने, उन्होंने 'गीता का महत्व' पर और छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता श्री कनक तिवार जी ने 'विवेकानन्द और संवैधानिक कर्तव्य' पर व्याख्यान दिया।

विवेकानन्द हवाईअड्डा, रायपुर में १२ जनवरी को स्वामी विवेकानन्द जयन्ती मनाई गयी।

श्रीरामकृष्ण सेवा आश्रम, अम्बिकापुर में २५ नवम्बर, २०१५ बुधवार को गुरुनानक देव का ५४७वाँ जन्मोत्सव मनाया गया। आश्रम के सचिव स्वामी तन्मयानन्द जी ने नानकदेव के विविध जीवन-प्रसंगों पर प्रवचन दिया। २७ नवम्बर, शुक्रवार को गुरुद्वारा के रागी जत्था द्वारा सायंकालीन सभा में मंदिर प्रांगण में गुरुवाणी प्रस्तुत की गई। ज्ञानी देवेन्दर सिंह ने गुरुनानक देव के जीवन के प्रेरक प्रसंगों का उल्लेख किया।

रामकृष्ण मठ, पुणे में ३ जनवरी को महाराष्ट्र के मुख्यमन्त्री श्री देवेन्द्र फड़नवीस ने विवेकानन्द ज्ञानपीठ भवन का शिलान्यास किया।

चेन्नई सारदा विद्यालय ने ८ और ९, २०१६ जनवरी को प्लैटिनम जयन्ती मनाई। उस्मानिया रोड, चेन्नई के प्रमुख परिसर में श्रीमाँ सारदा देवी की लाइफ-साइज प्रतिमा स्थापित की गई। इस उपलक्ष्य में आयोजित कार्यक्रमों में स्वामी गौतमानन्द जी और महासचिव महाराज ने भाग लिया।

कोलकाता, रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान के द्वारा सागर द्वीप के मकर संक्रान्ति मेले में चिकित्सा शिविर का आयोजन किया, जिसमें ५४१९ यात्रियों की चिकित्सा की गई और १५० कम्बल और ५००० पुस्तकें बाँटी गईं।

मनसाद्वीप, रामकृष्ण मिशन ११ से १६ जनवरी तक सागर मेले में यात्री-शिविर लगाया, जिसमें ११७५ यात्रियों के भोजन-आवास की व्यवस्था की गई। ○○○